॥ श्रीहरिः ॥

160

कलेजेके अक्षर

(पढ़ो, समझो और करो)

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

कलेजेके अक्षर

(पढ़ो, समझो और करो)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

कल्याणमें 'पढ़ो, समझो और करो' शीर्षकमें जो जीवनमें सात्त्विकता ला देनेवाली, जीवनको उच्चस्तरपर चढ़ा देनेवाली, मानवताका सच्चा स्वरूप बतलाकर उसका विकास करनेवाली एवं भगवान्‌की ओर लगानेवाली सच्ची घटनाएँ छपती हैं, वे सभी पाठकोंके लिये बड़े ही आकर्षणकी वस्तु हैं। उन्हीं घटनाओंका संग्रह 'कलेजेके अक्षर' नामसे प्रकाशित की जा रही है।

पाठकोंसे निवेदन है कि वे इस पुस्तिकामें प्रकाशित आदर्श घटनाओंका अध्ययन करके लाभ उठावें।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरि: ॥

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

॥ श्रीहरि: ॥

कलेजेके अक्षर

गणेशचतुर्थीका दिन था। सबेरे लगभग आठ बजे थे। हाथ-मुँह धोकर सब चाय-पानीकी तैयारीमें लगे थे कि बाहरसे आवाज आयी। भाई साहबने जाकर दरवाजा खोला, देखते हैं दो बैलोंकी रास हाथमें लिये एक चिथड़ेहाल ग्रामीण बाहर खड़ा है।

'कैसे हो, भैया!' दरवाजा खोलनेवाले भाई साहबसे बूढ़े ग्रामीणने पूछा। 'सब ठीक है।' संक्षेपमें ही भाई साहबने उत्तर दे दिया।

ब्याज-बट्टेका धंधा करनेवाले हमारे पिताजीके जीवनकालमें ऐसे कितने ही ग्रामीण हमारे यहाँ आया करते। इस बूढ़ेका आना भी कोई नयी बात नहीं थी; परंतु बैलोंकी जोड़ीको साथ देखकर कुछ नयी-सी बात लगी।

बैलोंको बाहर बाँधकर धीरे-धीरे बूढ़ा भीतर आया और देहलीके पास बैठकर बोला—'भैया! बड़े बाबू मरते समय हमारे विषयमें कुछ कह गये थे क्या?'

पिताजीकी मृत्यु अचानक हृदयकी गति रुक जानेसे हुई थी; इस छोटी-सी बातकी तो चर्चा ही क्या, बड़ी-बड़ी महत्त्वकी बातें बिना बताये रह गयी थीं। अतएव भाई साहबने कहा—'बड़े बाबूने तो तुम्हारे बाबत कुछ नहीं कहा।'

'उनके बहीखातोंमें कोई लिखावट है?' फिर बूढ़ेने पूछा।

भाई साहबने तुरंत पिताजीके सब बहीखातोंको देख डाला, कहीं बूढ़ेके नामका कोई लेन-देन लिखा नहीं मिला। अत: उन्होंने कहा—'इनमें तो कहीं कोई लिखावट नहीं है।'

बूढ़ा जरा स्वस्थ होकर धीरेसे बोला—'भले भैया! बड़े बाबू खातेमें लिखना भूल गये। पर मैंने अपने कलेजेपर लिख रखा है। ये कलेजेके अक्षर कैसे मिट सकते हैं? तुम तो भैया! तब शहरमें पढ़ते थे, तुमको क्या पता। पर नहीं, परियार साल इसी गणेश-चौथके दिन माँका कारज करनेके लिये मैं बड़े बाबूसे पाँच सौ रुपये ले गया था और इस साल गणेशचौथके दिन ब्याजसमेत कुल पाँच सौ और पचास रुपये लौटानेका मैंने वादा किया था। बड़े बाबू तो भगवान्के घर पहुँच गये पर मेरा वादा थोड़े ही भगवान्के घर पहुँच गया। मुँहके बैन क्या कभी पलट सकते हैं ?'

'न दस्तावेज, न लिखा-पढ़ी और न बहीखातोंमें कहीं उल्लेख। कानूनके अनुसार कोई भी प्रमाण नहीं, इतनेपर भी यह ग्रामीण बूढ़ा केवल मुँहकी बातपर पाँच सौ ही नहीं, ब्याजके पचास रुपये जोड़कर पाँच सौ पचास दे रहा है और वह भी जिनसे लिये थे, उन बाबूको नहीं, उनके उत्तराधिकारीको। जिला-अदालत, हाईकोर्ट, सुप्रीमकोर्ट और कायदे-कानूनके इस जमानेमें यह घटना कितनी आश्चर्यजनक है!'

'खूनी निर्दोष ठहरे और निर्दोष फाँसी चढ़े। लाखोंकी लूट लोप हो जाय और पावरोटी चुरानेवाला जेल जाय। कागजका टुकड़ा जो कहे, वह हो। मनुष्य तो मानो मनुष्य ही नहीं रहा। आँखों-देखी बात झूठी साबित हो और कभी कल्पनामें भी न आनेवाली बात सच्ची सिद्ध हो! कानूनकी दुनिया ही निराली है। झूठ, प्रपंच, अनीति और अनाचारका आश्रय लेकर कानूनके पंजेसे छिटक जानेवाला चालाक और प्रवीण माना जाय। जो वकील अधिक मात्रामें झूठ बोल बुला सके, वह होशियार बतलाया जाय। सत्य तो मानो धरतीके उस पार ही जा छिपा!

चार आने पैसोंके कानूनके अनुसार सही सिक्के बने—बस, मनुष्यका इतना भी मूल्य नहीं। यह है आजकी दुनिया और बस, यही है सुधार!' भाई साहबका मन विचार-सागरमें डूब गया।

'भैया! इन बैलोंको कहाँ बाँधूँ!' बैलोंकी रास खींचते हुए बूढ़ेने पूछा।

विचार-सागरमें डूबे भाई साहब कुछ कहें—इसके पहले ही बूढ़ेने फिर कहा—'यह मेरा मतवाली चाल चलनेवाला—अभी पिछले साल ही एक सिंधीसे सौ-सौ रुपयेके तीन ढेर लगाकर इसे लिया था और इस ललमुँहेको बीस मन बिनौले और दस मन गेहूँ देकर धन्ना सेठसे लिया था।' यों कहते-कहते बूढ़ेका गला भर आया, आँखें छलछला उठीं। मानो पैर टूट गये हों, वह वहीं ढुलक पड़ा। मालिकको संकटमें समझकर बैल उसे चाटने लगे। बूढ़ा भी धीरे-धीरे बैलोंको थपथपाने लगा। तुरंत ही सारी हिम्मत बटोरकर बूढ़ा खड़ा हो गया और चौखटके पास पड़ी हुई अपनी लाठी हाथमें लेकर भाई साहबसे 'जै रामजीकी' करके चलते-चलते कहता गया—

'भैया! घबराना मत, बड़े बाबू नहीं हैं, पर उनका यह पुराना चाकर अभी जी रहा है। बड़े बाबूने मेरे बहुत ढाँकन ढके थे। उनका गुण कैसे भूला जा सकता है! इन बैलोंकी कीमत साढ़े पाँच सौसे कम नहीं है तो भी अगर पाँच सौ पचाससे कम रुपये उठें तो मुझे संदेशा भिजवा देना, मैं अपने हल और खेत बेचकर भी पूरा कर्जा भर दूँगा!

इतना कहकर बूढ़ेने अपने सगे पूत-सरीखे बैलोंकी ओर एक नजर डाली और चल दिया। उसके डग-डगपर हृदयकी वेदना बोल रही थी!

—श्रीजयन्ती साह

वे कौन थे?

पहलेकी घटना है। मेरे पिताजीकी उम्र लगभग ५५ वर्षकी है। वे दोहाद (गुजरात)-में थे। एक दिन अकस्मात् हृद्रोग तथा उष्णताकी शिकायत बढ़नेसे वे भयानक बीमारीके चंगुलमें फँस गये। मल-मूत्रके द्वार रुक गये। पेट फूल गया। नलिकाके द्वारा बड़ी कठिनतासे पेशाब करवाया जाता था। लगभग बीस दिन लगातार इसी अवस्थामें बीत गये। अन्न-पानी सब बंद था। बोलना-चलना बंद। बिलकुल अवसन्न चारपाईपर लेटे रहते थे। बड़े-बड़े डॉक्टर-हकीमोंका इलाज हुआ। करीब बारह-तेरह सौ रुपये खर्च हो गये, पर कोई अन्तर नहीं पड़ा। डॉक्टर-हकीमोंने आखिरी राय दे दी कि रोगी किसी हालतमें बच नहीं सकता और उन्होंने अपने हाथ टेक दिये। घरमें सबकी राय हुई, अब व्यर्थमें दवा क्यों करायी जाय। दवा बन्द कर दी गयी। हमारी आँखें गंगा-यमुना-धार बनी हुई थीं। कोई उपाय हाथमें नहीं रहा। तब केवल दीनदयाल ईश्वरपर भरोसा करके हम पाँचों भाई श्रीमद्भगवद्गीताका पाठ करने लगे। प्रत्येक अध्यायके अन्तमें कातर भावसे रामधुन करते। यों हमें ३०—३२ घंटे बीत गये।

इसी बीच अकस्मात् किसी एक महात्माने आकर हमारे दुःखका कारण पूछा। हमने सारी दुःख-दर्दकी कथा महात्माको सुना दी; महात्माने एक पुड़िया फाँकनेकी दवा दी और कहा कि 'इससे तुम्हारे पिता अच्छे हो जायँगे।' हमें महात्माकी बातपर विश्वास नहीं था। जहाँ बड़े-बड़े डॉक्टर कुछ नहीं कर सके, वहाँ

इस पुड़ियासे क्या होना है। हमें विश्वास तो पूरा नहीं हुआ। पर और कोई उपाय था नहीं, हमने पुड़िया दे दी। आश्चर्यचकित हो गये सब-के-सब, जबकि पुड़िया देनेके करीब एक घंटे बाद ही पिताजीकी आँखें खुल गयीं। मुँह भी खुला। मल-मूत्रके द्वार भी खुल गये और पेट भी हलका हो गया।

सब घरके लोग, रिश्तेदार सभी दंग रह गये, देह-त्यागके लिये तैयार पिताजी डेढ़ घंटेमें ही पूर्ण स्वस्थ होकर खड़े हो गये। शरीरमें कमजोरी अवश्य थी, पर उन्होंने नया जीवन पाया।

यह कितना बड़ा आश्चर्य था। महात्माकी खोज की गयी, परंतु वे आजतक नहीं मिले। वे कौन थे, महात्मा? भगवान्? गीता माता? या रामनाम?

—वंशीलाल एम० अग्रवाल, बी० ए०

विश्वासका फल

घटना मार्च १९१५ की है। मैं प्रयागमें इन्ट्रेंस दर्जामें पढ़ता था। गवर्नमेंट हाईस्कूलमें हम परीक्षा देने गये। उस समय इन्ट्रेंस परीक्षामें १२ पर्चे होते थे। प्रायः परीक्षा सोमवारको प्रारम्भ होकर शनिवारको समाप्त हो जाती थी। प्रत्येक दिन दो पर्चे होते थे। पहला पर्चा १० बजेसे १ बजेतक और एक घंटाके विश्रामके बाद २ बजेसे ५ बजेतक दूसरा पर्चा होता था। इस तरह ६ दिनमें बारह पर्चे हो जाते थे। आजकलकी तरह परीक्षाका समय शैतानकी लंबी आँतकी तरह महीनों नहीं चलता था। आजकल गरीब विद्यार्थियोंके लिये बड़ी कठिनाई है कि वे मुश्किलसे जाकर शहरोंमें जहाँ परीक्षा होती है, काफी दिनोंतक वहाँ अपना डेरा जमाये पड़े रहें। इस महँगाईके जमानेमें काफी दिन अपने घरसे बाहर पड़े रहना, बड़ी परेशानी और दिक्कतका काम है।

परीक्षाका दूसरा दिन था। पहला पर्चा हो चुका था। विद्यार्थी उत्कण्ठावश दूसरे विद्यार्थियोंसे अपने उत्तरोंका मिलान करते थे। इससे उन्हें बड़ी मनस्तुष्टि और सन्तोष होता था। मेरी सीटके पीछे एक मुसलमान विद्यार्थी बैठा था—वह अपने उत्तरोंके साथ मेरे उत्तरोंका मिलान कर रहा था, वह मेरे बिलकुल सन्निकट था। उसने एक जमुहाई ली। उसके मुँहसे बड़ी दुर्गन्धि निकली और परिणामस्वरूप मुझे कै (वमन) हो गयी। मेरे सिरमें चक्कर आने लगा। दर्द भी पैदा हो गया। परीक्षा-हालकी निगरानी करनेवालोंने तुरंत भंगीको बुलाया और उसे साफ कराया। मैंने खूब अच्छी तरहसे हाथ-मुँह धोया—गुलाबका फूल भी सूँघा,

परंतु मेरी तबीयत ठीक न हुई। उसी हालतमें मैंने दूसरा पर्चा भी किया। वह पर्चा शायद संस्कृतका था। मेरा वह पर्चा बिगड़ गया। मैं उसे पूरा कर सीधे अपने घर चला आया। मेरा मन बार-बार यही कहता था कि तुम्हारी सफलता संदेहात्मक है। मेरे मकानमें तीन और विद्यार्थी रहते थे। उन्होंने उन पर्चोंके उत्तरोंके बाबत पूछताछ शुरू की—मैंने इधर-उधरकी बातें कर उनसे अपना पिण्ड छुड़ाया, मेरा पेटा यद्यपि डोल गया था; परंतु मैंने अपनी मुखमुद्रा सदैव प्रसन्न रखी—ताकि वे मेरी कमजोरी भाँप न सकें।

परीक्षा समाप्त हो गयी। हमारे मकानके तीनों सहपाठी घर जानेको तैयार हुए—उनमेंसे दो हमारी बस्तीके ही थे। ऐन मौकेपर मैंने उनसे घर न चलनेके लिये कहा। कारण पूछनेपर मैंने उनसे 'चित्रकूट' दर्शन करनेको कहा। वे लोग चले आये। मैं दूसरे दिन अपना सामान प्रयागके एक परिचित व्यक्तिके यहाँ रखकर धोती, दरी, लोटा और चद्दर लेकर चित्रकूट-दर्शन करनेके लिये चल दिया। मेरे पास खर्च बहुत मामूली था। मैं इलाहाबादसे मानिकपुर आया। मानिकपुर स्टेशनपर ज्यों ही मैं गाड़ीसे उतरा, त्यों ही हमारे जिले (फतेहपुर)-के असनी गाँवके पं० शिवानन्द त्रिवेदी वकीलके लड़के प्लेटफार्मपर मिल गये—वे यहाँ असिस्टेंट स्टेशन-मास्टर थे। वकील साहब फतेहपुरमें वकालत करते थे और साधु-संतोंकी खूब सेवा और सत्संग करते थे। वे मुझे बहुत प्यार करते थे। अपने पुत्रकी तरह मेरे प्रति उनकी वात्सल्य भावना थी। त्रिवेदीजीने बड़े जोरसे चिल्लाकर कहा कि 'अरे भाई! तुम यहाँ कैसे?' मैंने भी उनसे उसी लहजेमें पूछा—'भाई, तुम यहाँ कैसे?' उन्होंने कहा—'मैं

यहाँ असिस्टेंट स्टेशन-मास्टर हूँ।' मैंने कहा कि 'मैं चित्रकूट-दर्शन करने जा रहा हूँ।' वे मुझे अपने क्वार्टर ले गये। उन्होंने मुझे बड़े आदर और सत्कारसे रखा। मानिकपुरसे बाँदा जानेवाली गाड़ीके रास्तेमें करवी और चित्रकूट पड़ता है। मैंने मानिकपुरसे करवी पैदल जाना निश्चय किया; परंतु इस बातको त्रिवेदीजीसे नहीं कहा। उनसे विदा होकर मैं चित्रकूटके लिये चल दिया। रास्ता सीधा था। पक्की सड़क मानिकपुरसे करवी होती हुई चित्रकूट जाती है। मैं शामके करीब करवी आया, बाजारमें हमारी विन्दकीके बाबू राधावल्लभजी अग्रवाल मिल गये। वे यहाँ करवीमें मीरजापुरके श्रीभारामल फतेहचन्द्र फर्ममें मुनीम थे। हमारे पिता और हमारे पिताके मामासे उनका घनिष्ठ स्नेह था। वे मुझे अपनी दूकान ले गये। भोजन करके मैं सो गया।

सबेरा हुआ—शौचसे निवृत्त होकर मैंने उनसे चित्रकूट जानेकी आज्ञा माँगी, उन्होंने मेरे साथ दूकानका एक पल्लेदार कर दिया कि वह मुझे रास्ता बता आये। मैंने उससे रास्ता पूछकर उसे विदा किया। चित्रकूट करवीसे तीन-चार मीलसे ज्यादा नहीं है। वहाँ पहुँचकर छबिकिशोरके मन्दिरमें मैंने डेरा डाला। हमारे पासके घोरहा ग्रामनिवासी पं० वंशीधर, मुरलीधर दो भाई थे। वे अच्छे ज्योतिषी थे। वे प्राय: हर साल चित्रकूट जाते थे। वे नयागाँव जागीरदारके यहाँ जाया करते थे। यह नयागाँव पैसुरनी नदीके किनारे बसा है, जो चित्रकूटमें ही है, इन्हींका छबिकिशोरजीका मन्दिर है। उपर्युक्त पण्डितजीने हमसे छबिकिशोरजीके बाबत कहा था। चित्रकूटमें पहले-पहल गया था। मेरा वहाँ कोई परिचित व्यक्ति नहीं था। भगवान्‌की गोदमें अपनेको सौंपकर मैं निष्कण्टक भावसे यहीं ठहर गया। मैं दूसरे

दिन प्रातःकाल उठकर शौच कुल्ला करके कामतानाथजीके दर्शनको निकला। मेरी मातामही बड़ी दयालु और भक्त स्वभावकी थीं। उनका अधिकांश समय पूजा-पाठमें बीतता था। मैं लड़कपनसे अपनी माँके पास न रहकर इन्हींके पास रहता था। अपने पिताको भैया कहता था और उन्हें भैया अम्मा कहता था। मैं उन्हींके साथ लेटता था। उन्हें तुलसी, सूर तथा मीराके भजन और पद खूब याद थे। वे मुझे खूब सुनाया करती थीं। मीराके पद वे बड़े भक्तिभावसे गाया करती थीं। उन्होंने मुझसे कई बार कहा था कि 'जो कोई चित्रकूटके कामदगिरिकी परिक्रमा और कामतानाथजीके दर्शन कर आता है, उसके सब मनोरथ सिद्ध हो जाते है; सब कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। जिस दिन मेरा पर्चा खराब हुआ था, उसी दिन मैंने परीक्षाफल निकलनेके पहले कामदगिरिकी परिक्रमा करने और कामतानाथजीके दर्शन करनेका संकल्प कर लिया था। उसकी पूर्ति करके मैंने साधु-महन्तोंके दर्शन किये। यद्यपि वैरागी साधुओंमें मैंने न तो उच्चस्तरकी साधना देखी और न प्रकाण्ड पाण्डित्य। उनमें धर्मका बहिरंग रूप ही देखा। यह भी सम्भव है कि मुझे अच्छे महात्माओंके दर्शन न हुए हों। दोपहरको मैं दर्शन करके और परिक्रमा करके छबिकिशोरके मन्दिरमें गया। वहाँ एक वैश्य महोदय श्रीमद्भागवतकी कथा सुन रहे थे। मैं भी सुनने लगा। जब कथाका विश्राम हुआ तो कथा बाँचनेवाले पण्डितजी मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे भोजन करनेके लिये बड़ा आग्रह किया। मैंने उनके अनुरोधको अस्वीकार किया, तब सेठजी आये। उन्होंने मुझे कुछ-न-कुछ खानेका अनुरोध किया। थोड़ी मिठाई खायी और वहीं छबिकिशोरके मन्दिरमें सो गया। सुबह उठकर पण्डितजीको

प्रणाम कर करवीके लिये प्रस्थान किया। चलते समय मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न था।

मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥

—की याद हो आयी। शामको करवी आया। दूसरे दिन मेरे यहाँके सेठजीने मुझसे कहा कि 'लगे हाथ राजापुर भी हो आओ और उधरसे भरवारी स्टेशनपर चढ़कर अपने घर चले जाना।' यह मुझे पसंद आ गयी। उन्होंने मुझे राजापुरकी बैलगाड़ीमें बैठा दिया। ये गाड़ियाँ राजापुरसे अनाज बेचनेके लिये करवी आती थीं। मैं राजापुर आकर पं० गंगाप्रसादजीके वहाँ ठहर गया। उपर्युक्त पण्डितजी विन्दकीके पास गँगरावल गाँवके निवासी थे और विन्दकीमें प्राइमरी स्कूलमें उन्होंने मुझे पढ़ाया था। पण्डितजी हमारे मकानके सामने वैद्य बाबाके कमरेमें रहते थे। वे बड़े साधु स्वभावके पुरुष थे। उनके यहाँ ठहरा। संकटमोचन और तुलसीदासजीके मन्दिरके दर्शन किये। उनका हस्तलिखित अयोध्याकाण्ड भी देखा। दूसरे दिन शौचसे निवृत्त होकर जलपान कर भरवारीके लिये चल दिया। टेटमें पैसे थोड़े थे। शायद भरवारीसे विन्दकी रोडतक रेल-किराया और स्टेशन विन्दकी रोडसे विन्दकीतकका इक्का-किराया। निदान राजापुरसे भरवारीतक मैंने पैदल यात्रा की। भरवारीमें रेलमें बैठा और इस तरह विन्दकी रोड स्टेशनमें उतरकर इक्कासे अपने घर आया।

ज्यों-ज्यों परीक्षाफल निकलनेके दिन नजदीक आने लगे, मैं कुछ सशंकित होने लगा। मेरे दोनों मित्र, जिन्होंने मेरे साथ परीक्षा दी थी, मेरे पास आते और 'गजट' आनेकी बाबत पूछते थे। विन्दकीमें सरकारी पत्र, जिसमें इन्ट्रेंसका परीक्षाफल छपता था, हिंदी मिडिल स्कूलमें आता है। एक दिन वे दोनों मित्र मेरे

पास आये और गजट देखनेका आग्रह करने लगे। मैंने उनसे गजट देख आने और परिणामसे अवगत करानेकी प्रार्थना की। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। थोड़ी देरके बाद दोनों साथी परीक्षाफल मालूम कर वापस आये। उनमेंसे एकका मुख म्लान था, दूसरेका प्रसन्न। मैं समझ गया कि म्लान मुखवाले सहपाठी 'फेल' हैं और प्रसन्न मुखवाले साथी 'पास' हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि 'तुम पास हो गये हो।' मैंने अपनी प्रसन्नताके भाव रोककर फेल होनेवाले साथीको सान्त्वना दी और इस तरह मेरी परीक्षाकी बात समाप्त हुई। मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि कोई महान् शक्ति योगक्षेमकी व्यवस्था मेरे लिये किये हुए है। घर आकर मैंने अपनी दादीसे चित्रकूट-दर्शन और कामदगिरिकी परिक्रमा करनेकी बात सुनायी थी, तब उन्होंने तत्क्षण ही यह कह दिया था, कि 'बच्चा ! तू पास है !' आज परीक्षाफल देखकर निश्चितरूपसे मैंने उनसे कहा—'अजिया, तुम्हारे आशीर्वादसे मैं पास हो गया।' उन्होंने कहा 'नहीं बेटा ! कामतानाथजीने तुझे पास किया।' मैंने उनकी प्रेम-पूरित वाणीको सुना और भगवान्‌की जय-जय कर मैं अपने काममें लग गया।

—पं० चन्द्रिकाप्रसाद बाजपेयी

सेवा-मूर्ति

कुछ समय पहलेकी बात है। फ्ल्यूका प्रकोप सम्पूर्ण देशमें व्याप्त हो चुका था। उसी समय मैं रामायणपर प्रवचन करनेके हेतु नवरोजाबाद गया। वहाँ जाते ही इनफ्लुएंजाने मुझे भी अपने चंगुलमें धर दबाया। मैं अशक्त हो गया। सर्वत्र निराशा दीखने लगी। वहाँ किसीसे मैं परिचित भी नहीं था। अकेला ही था। इसीसे विशेष घबरा गया। पासमें विशेष पैसे भी नहीं थे, जिससे कि घर ही किसी प्रकार जा सकूँ। बहुत बड़े चक्करमें पड़ गया। उसी समय वर्षा भी होने लगी। ऐसी विपत्तिमें कोई बात पूछनेवाला भी नहीं दिखायी पड़ रहा था। तीन बज रहे थे। बुखार जोरोंसे चढ़ा था। जिस मन्दिरमें रुका था, वह भी वर्षाके आघातको सहन करनेमें असमर्थ था। ऐसी स्थितिमें मैं रामायणकी चौपाईको धीरे-धीरे पढ़ने लगा।

उसी समय एक बुढ़िया माई मेरे पास आयी और बिना कुछ कहे-सुने ही मेरा लाउडस्पीकर, हारमोनियम और सारा सामान उठा लिया और बोली 'बाबा चलो।' मैं भी बिना किसी हिचकिचाहटके लड़खड़ाते हुए चल पड़ा। वहाँ जाकर मैं लेट गया। मुझे नींद आ गयी । पाँच बजे उठा तो देखा कि बुढ़िया भीगी हुई मेरी चारपाईके पास बैठी रो रही है। मैंने पानी माँगा। बुढ़ियाने पानी देते हुए कहा—'बेटा! तू जल्दीसे अच्छा हो जा।' इतना कहकर उसने 'ऐस्प्रो' की दो टिकिया मुझे पानीके साथ खिला दी। मुझे कुछ आराम मालूम पड़ा। रात्रिमें बिना कुछ खाये ही मैं सो गया। जब दो बजे

रातको नींद खुली तो देखा, बुढ़िया बैठी है। उसकी आँखोंसे प्रेमाश्रु ढल रहे हैं। मैंने कहा—'माँ! तू बैठकर रोती क्यों है?' बुढ़ियाने आँसू पोंछते हुए कहा—'बेटा! सो जा, कुछ नहीं। मैं सो रही थी; अभी तो आयी हूँ।' बेचारी इस प्रकार प्यार करती मुझे चाय बनाकर पिलाती और सेवा करती। वैसे यह बीमारी तीन दिनोंके पहले नहीं समाप्त होती, पर मैं दो ही दिनोंमें पूर्ण स्वस्थ हो गया। स्वस्थ होनेपर कथा हुई। लोग अपने यहाँ भोजनके लिये आमन्त्रित करते, अच्छा स्थान भी रहनेके लिये देते, पर बुढ़ियाके वात्सल्यभावको देखकर मैं कहीं नहीं गया। कथा समाप्त होनेपर दो सौ रुपये दक्षिणास्वरूप प्राप्त हुए। मैंने अपनी उस बुढ़िया माईके चरणोंमें ले जाकर इस पत्र-पुष्पको समर्पित कर दिया। आग्रह करनेपर बुढ़िया माईने कहा—'बेटा! मेरे ऐसे भाग्य कहाँ, जो मैं सेवा कर सकूँ। मैं अपनेको धन्य समझती हूँ कि तूने मेरी सेवा स्वीकार की। बेटा! मेरी दक्षिणा तो यही होगी कि हमेशा तू इस अभागिन माँकी सेवा स्वीकार करता रह।' बुढ़िया माईकी इस स्नेहभरी वाणीको श्रवण कर मैं आनन्द-विभोर हो गया। उसके इस भावको देखकर हृदयमें श्रद्धाकी लहर उमड़ पड़ी। उसने २५ रुपये और देकर २०० रुपये वापस कर दिये।

आज भी जब मैं इस सेवा-मूर्तिका पवित्र स्मरण करता हूँ तो मेरे नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलछला आते हैं।

—कुमुदजी कथावाचक, बी० ए०, साहित्यरत्न

भिखारिनके भेषमें पवित्र संस्कार-मूर्ति

अहमदाबादसे मैं भावनगर आ रहा था। शामका समय था। टिकट लेकर मैं गाड़ीमें बैठ गया। डिब्बेमें अबतक रोशनी नहीं हुई थी। चारों ओर मुसाफिरोंकी चहल-पहल, गाड़ीकी सीटीकी तीखी आवाज और इंजिनकी घरघराहटसे वातावरण कम्पायमान था।

मेरे सामने ही एक भाई रेशमी कपड़ोंसे सुसज्जित बैठे थे। व्यापारी-जैसे लगते थे। बहुत भीड़ थी और गरमी भी बहुत थी। पंखा चल नहीं रहा था। डिब्बेमें रोशनी भी नहीं थी। गाड़ी खुलनेमें कुछ देर थी। इसलिये वे भाई अपने पासकी दो थैलियोंको सीटपर रखकर ठंडी हवामें मन बहलानेके लिये नीचे उतर पड़े।

कुछ समय बाद गाड़ी खुलनेकी तैयारी होने लगी। डिब्बेमें रोशनी हो गयी। पंखे चलने लगे। वे सज्जन डिब्बेमें आ गये। परंतु देखा तो दोनों थैलियाँ गायब। इधर-उधर देखा, नजर दौड़ायी, परंतु थैलियाँ कहीं दिखायी न दीं। उनका चेहरा पीला पड़ गया। मुँहपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। आँखें डबडबा आयीं। 'क्या हुआ? क्या हुआ?' की आवाज चारों ओरसे आने लगी। उन्होंने कहा—'उन थैलियोंमें मेरा दो हजार रुपयेका रेशमी कपड़ा था। मैं कपड़ेका व्यापार करता हूँ।' डिब्बेके सारे मुसाफिरोंने सब ओर ढूँढ़ा, सबने निराश होकर यही कहा—'अँधेरे और भीड़का लाभ उठाकर किसी चोर उचक्केने हाथ मारा है।' वह व्यापारी बेचारे मन मसोसकर बैठ गये। उनकी आँखोंके सामने तितलियाँ उड़ने लगीं। गाड़ी चल दी।

परंतु जब धोलका स्टेशन आया, तब मानो एक चमत्कार हुआ। डिब्बेके बाहर कोई चिल्ला रहा था—'किसीकी थैलियाँ खो गयी हैं, थैलियाँ?' आवाज सुनते ही वे सज्जन मानो नींदसे जग उठे हों—खड़े होकर जोरसे आवाज लगाकर उसे बुलाने लगे। दूसरे यात्री भी सजग हो गये। दरवाजा खोला तो देखा कि मैले और फटे-पुराने कपड़े पहने एक भिखारिन-जैसी स्त्री दोनों हाथोंमें थैलियाँ लिये खड़ी है।

उन सज्जनके मानो जान आ गयी, उन्होंने कहा—'ये दोनों मेरी ही थैलियाँ हैं। बहिन! 'आपको कैसे मिली?'

स्त्रीने कहा—'क्षमा करना भाई! मेरा बेसमझ लड़का अहमदाबादके स्टेशनपर न जाने कहाँसे इनको ले आया। मैंने उसको बहुत पीटा और कहा कि मजदूरी करना, भीख माँगकर खाना, पर कभी भी चोरी मत करना। पिछले पापोंसे तो हमारी यह दशा हो रही है! अब फिर चोरी करेंगे तो अगले जन्ममें हमारी पता नहीं कैसी भयानक दुर्दशा होगी।'

व्यापारी फूला नहीं समाता था। वह अपनी जेबसे पाँच रुपयेका नोट निकालकर उस स्त्रीको देने लगा। स्त्रीने पहले तो इनकार किया और साफ-साफ ना कह दी, परंतु दूसरे यात्रियोंके आग्रहसे अन्तमें ले लिया।

हम सब इस प्रसंगको देखकर हैरान हो गये। भिखारिनके भेषमें छिपी वह भारतकी पवित्र संस्कार-मूर्ति अँधेरेमें अदृश्य हो गयी। हम उसकी मूक वन्दना करने लगे।

—रमाशंकर ना० भट्ट

गरीबकी परोपकार-वृत्ति

आषाढ़ कृष्ण चतुर्थीकी बात है। मैं और सुखदेव ठाकुर तोबनसे साइकिलद्वारा रामचन्द्रपुर जा रहे थे। मेरे पास दो मनीबैगोंमें पाँच हजार रुपये थे—एकमें तीन हजार और दूसरेमें दो हजार।

हम दोनों बड़ी तेजीसे साइकिल चला रहे थे—रास्तेमें कहाँ क्या हुआ सो तो पता नहीं, रामचन्द्रपुर पहुँचकर जब मनीबैग निकालने लगे तो तीन हजारवाली तो मिल गयी, पर दो हजारवाली गायब थी। हमारे शरीरपर मानो बिजली-सी मार गयी। मुँह फीका पड़ गया। मनमें कई प्रकारके तूफान उठने लगे। यह निश्चय हो गया कि अब मनीबैग नहीं मिलेगी। फिर भी मैं साइकिलसे उसी रास्तेसे लौटा, यद्यपि पैर भारी हो गये थे। साइकिल चलायी नहीं जा रही थी, तथापि मैं आगे बढ़ता गया। इधर-उधर बड़ी तीखी नजरसे देखता लगभग दो मीलतक चला गया। इतनेमें सुनायी दिया—पीछेसे कोई आदमी पुकार रहा है और दौड़ा चला आ रहा है। मेरी रुकनेकी इच्छा नहीं थी, मन बहुत खराब था। पर मैं कुछ रुका, इतनेमें वह आदमी मेरे पास आ गया। फटे-मैले कपड़ेसे लाज ढक रखी थी उसने, बड़ा ही गरीब जान पड़ता था। उसके चिपके गाल, धँसी आँखें, निकले हुए दाँत और चमकती हुई हड्डियाँ तथा नसें उसकी मूर्तिमान् दरिद्रताके दर्शन करा रही थीं। उसने समीप आकर बड़े प्रेमसे मुझको नमस्कार किया और कहा—'बाबूजी! यह बैग आपहीकी है। मैंने दूरसे इसको आपकी जेबसे गिरते देखा था।

मैंने इसे उठाया, इतनेमें आप बड़ी तेजीसे बहुत दूर निकल गये। मैंने आवाज दी, पर आप सुन नहीं पाये। आखिर मैं यह सोचकर यहीं बैठ गया कि बैग न मिलनेपर बाबूजीको बड़ा दुःख होगा और वे इसी रास्ते उसे खोजने आयेंगे, तब मैं उन्हें दे दूँगा। अब यह आप अपनी बैग सँभालिये।'

उस गरीबकी परोपकार-वृत्ति—ईमानदारी देखकर मैं गद्गद हो गया। मेरा मुरझाया हुआ मुखकमल खिल उठा। मेरा रोम-रोम उसके उपकारसे दब गया। मैंने पचीस रुपये कठिनतासे उसको दिये।

—नवरत्नमल नाहर

अमृतका प्रवाह

रामबदन और हरजीवन दोनों सगे भाई थे, खेतीका काम था। दोनोंमें बड़ा प्रेम था। पिता-माता छोटी अवस्थामें मर गये थे। अतएव बड़े भाई रामबदन और उसकी स्त्री कौसिल्याने ही हरजीवनको बड़े प्यारसे पाला-पोसा, उसका ब्याह किया। हरजीवनकी स्त्री गौरी घर आयी। वह कुछ ईर्ष्यालु तथा कड़े मिजाजकी थी। वह अपनी जेठानी तथा उसके दोनों बच्चे—रामू और पमियाके साथ रूखा व्यवहार करती। जेठानी कौसिल्या बड़े विशाल हृदयकी महिला थी। वह उसके रूखे व्यवहारको देखकर हँस देती और सदा सच्चे स्नेहका ही बर्ताव करती। उसके दोषोंको छिपाती। पतिके सामने उसकी जरा भी निन्दा नहीं करती। बल्कि उसके गुणोंकी प्रशंसा करती। पत्नीके व्यवहारसे हरजीवनको दुःख तो बहुत होता, पर वह पत्नीकी नाराजीके भयसे कुछ बोलता नहीं। किंतु वह उसकी शिकायत भी नहीं सुनता। इससे वह और भी कुढ़ती। उसका दुर्व्यवहार बढ़ता गया, पर कौसिल्यापर और उसके कारण रामबदनपर वह कुछ भी असर नहीं डाल सका। वे गौरीको मानस रोगसे ग्रस्त समझकर उसकी भूलोंपर ध्यान नहीं देते और सदा उसपर कृपा तथा प्रीति ही करते।

एक दिन गौरी झुँझलायी हुई-सी रसोई बना रही थी। कौसिल्याका लड़का रामू भूखा था। निर्दोष बच्चेके मनमें कोई भेदभाव नहीं था। वह जैसा माँको समझता वैसा ही चाचीको। हाँ, कभी-कभी चाचीकी डरावनी सूरत देखकर कुछ सहम-सा

जरूर जाता। वह चाचीके पास रसोईमें आया और कुछ खानेको माँगने लगा। कौसिल्या दूसरे काममें लगी थी। घरपर पुरुषोंमें भी कोई नहीं था। गौरीने बच्चेको दुत्कार दिया और कहा—'चला जा, सीधा-सा यहाँसे। अपनी माँ आये तब खानेको माँगना। मुझसे चीं-चपड़ की तो जलती लकड़ीसे पीटूँगी। एक बार बच्चा कुछ डरा तो सही, पर चार सालका भोला था, भूख लगी थी। वह समझा ही नहीं, चाची क्या कह रही है और उनसे फिर जरा जोरसे चिल्लाकर रोटी माँगी। गौरी झुँझलायी हुई थी ही। जलती लकड़ी चूल्हेसे निकालकर फेंकी, लड़केके पैरपर लकड़ी गिरी। लड़का चिल्लाया, कौसिल्या दौड़ी आयी। देखा तो लड़केके पैरमें कुछ चोट लगी और कुछ जल भी गया। गौरीने गुस्सेमें आकर यह काण्ड कर तो दिया, पर अब वह भी डर रही थी। कहीं हरजीवनको पता लग गया तो पता नहीं क्या हो जायगा, क्योंकि वह इन दिनों गौरीकी हरकतोंसे बहुत दुःखी था। कई बार वह कह चुका था—'घरसे निकल जाऊँगा या मर जाऊँगा।'

वह रामूके पास आकर उदास खड़ी थी, देख रही थी जेठानी कौसिल्या क्या करती है। कौसिल्याने कहा—'बहिन! डर मत, यों भूल हो ही जाया करती है। लड़का कहीं दौड़ता हुआ गिर पड़ता तो चोट लगती या नहीं। यहाँ भी वैसे ही लग गयी है।' फिर बच्चेसे कहा—'बेटा! जा चाची तुझे लड्डू देगी और मैं अभी तेरा पैर धोकर पट्टी बाँध देती हूँ। तू रो मत।' रामूने लड्डूके नामसे रोना बंद कर दिया। कौसिल्याने आलू पीसकर जलेपर बाँध दिये और चोटपर पट्टी लगा दी। गौरीका तो हृदय ही बदल गया। उसने सोचा—'मैंने आजतक दुर्व्यवहार करनेमें कोई

कसर नहीं रखी! पर सहन करनेमें कौसिल्या मुझसे बहुत आगे बढ़ गयी। आज तो मेरे दुर्व्यवहारकी सीमा ही नहीं रही। इतनेपर भी कौसिल्याका यह सद्व्यवहार, यह शान्ति और मेरे प्रति यह स्नेह!' उसका हृदय द्रवित हो गया, आँखोंसे अनुताप और श्रद्धाके मिश्रित आँसू बह चले। वह दौड़कर लड्डू लायी और अपनी गोदमें बैठाकर बड़े प्यारसे रामूको खिलाने लगी।

इतनेमें दोनों भाई घर आ गये। उन्होंने रामूको गौरीकी गोदमें बैठे लड्डू खाते देखा तो वे चकित हो गये। गौरीने सलज्जभावसे मुँह फिरा लिया। कौसिल्या बोली—'धूपके लिये अँगारे ला रही थी। रास्तेमें एक अँगारा गिर गया। रामू दौड़ा आ रहा था, अँगारा छूते ही चिल्लाकर गिर गया। जरा-सी चोट लग गयी और कुछ दाह गया। गौरीने दौड़कर मरहम-पट्टी कर दी और अब बड़े स्नेहसे वह अपने बेटेको लड्डू खिला रही है।'

सचमुच रामू आज गौरीका लाड़ला बेटा हो गया। सब ओर प्रसन्नता छा गयी! कौसिल्याकी सहिष्णुता, स्नेह तथा सद्व्यवहारने घरमें सब ओर अमृतका प्रवाह बहा दिया।

—गोपाल अवस्थी

कर्जका भय

कुछ वर्ष पहलेकी बात है। हीरालाल नामक एक किसान आया और मुझसे पूछने लगा—'तुम सागरमलजीके लड़के हो क्या?' मेरे हाँ कहनेपर वह सौ रुपये निकालकर देने लगा और बोला—'बहुत दिन हुए, मैं तुम्हारे पिताजीसे एक सौ रुपये उधार ले गया था। उस समय तुम बहुत छोटे थे। अबतक मैं वे रुपये नहीं लौटा सका। अब मेरे पास रुपये जुटे हैं, तब लेकर आया हूँ।' मैं उसकी ओर देखता रह गया। तब उसने फिर कहा—'मैं तुम्हारे पैर पकड़ता हूँ। मुझे कर्जसे मुक्त कर दो। मैं ब्याज नहीं दे सकूँगा। किसी तरह बड़ी कठिनतासे रुपये इकट्ठे कर पाया हूँ। मुझे कर्जका बड़ा भय है बाबू!' यों कहकर वह बार-बार हाथ-पैर जोड़ने लगा।

मैंने सोचा, कितना ईमानदार और कर्जसे डरनेवाला है बूढ़ा किसान। बड़े-बड़े लोग आज भी कानूनसे बचकर रुपये हजम कर जाते हैं, मैंने चाचीजीसे बिना पूछे ही रुपये ले लिये तथा उससे कह दिया—'तुम कर्जसे मुक्त हो गये।' वह प्रसन्न होकर चला गया।

ये रुपये लगभग पचीस वर्ष पहलेके थे। हमारे पास कोई भी हिसाब नहीं था। यहाँतक कि चाचीको भी याद नहीं था।

किसानकी इस ईमानदारीको देखकर भगवान्‌से यह प्रार्थना की जाती है कि हम सबको भगवान् ऐसी ही सद्‌बुद्धि दें।

—हरीराम केडिया

नष्ट नीड

वह मुझे बहुत बुरा लग रहा था। टेबलपर कुर्सी रखकर मैंने उसे खींचकर जमीनपर पटक दिया। कुछ पीला-सा द्रव-पदार्थ और श्वेत कण फर्शपर बिखर गये। अंदर बैठी चिड़िया चूँ-चूँ करती उड़ गयी। वह पंख फड़फड़ाती अपने टूटे घोंसलेतक आती और पुनः लौट जाती। उसका यह क्रम बहुत समयतक चलता रहा।

किताब लेकर पढ़ने बैठा, पर काले शब्दोंके बीच मुझे यत्र-तत्र अनेक चिड़ियोंके छोटे-छोटे गुलाबकी पंखुड़ियों-से बच्चे दीख पड़े, मैंने पुस्तक पटक दी।

भोजन करने बैठा, पर मुझे दीखा—जैसे मेरी थालमें दालके स्थानपर पीला-सा द्रव-पदार्थ और रोटीके स्थानपर वही अण्डोंके श्वेत कण परोसे गये हैं। मैं उठ गया।

बाहर आकर खुले आँगनमें घूमने लगा, पर दूर क्षितिजसे एकके बाद एक दैत्याकार श्वेत अण्डे आते और मेरे निकट आते-आते सूक्ष्म होकर फूट जाते। मेरी नजरोंमें वही पीला तरल पदार्थ और श्वेत कण तैरने लगे।

सोचा, बाहर घूम आऊँ। नदी-किनारे रेतमें बड़ी देर बैठा रहा, पर चिड़ियोंके लाख-लाख झुंड एक साथ आकर मेरे सामने करुण क्रन्दन करने लगे।

'ऊँह! ये सब क्या पागलपन है। मैं फिजूल जरा-सी बातको सोचकर इतना परेशान हो रहा हूँ, क्या हो गया। यह भी कोई उद्विग्न होनेवाली घटना है?' सोचकर मैंने सिरको हलका-

सा झटका दिया और उठ खड़ा हुआ।

घर आया तो पत्नीने बताया, मुन्नेको तेज बुखार है। देखा, सचमुच बुखार तेज था।

—'दिनभर पानीसे खेलता रहता है। सर्दी लग गयी है। उतर जायगा।'

चार दिनतक बुखारकी हालतमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। डॉक्टरको बुलाया तो बताया—'टाइफायड'।

मुन्ना सुबहसे बेहोशीकी दशामें था। शरीरका तापमान १०४ से कम नहीं हो रहा था। दूधकी पट्टियाँ चढ़ानेके पश्चात् भी हालत चिन्तनीय हो गयी। हम दोनों ११ बजे राततक मुन्नाके बिस्तरके निकट बैठे रहे। मौन, शान्त! बहुत चाहनेपर भी मैं इस अशुभ विचारको हृदयसे न निकाल सका कि प्रभुने मुझे अपने अपराधका फल दिया है। मैंने क्यों उन निरपराध चिड़ियोंके अण्डोंको नष्ट किया और फिर वही क्रन्दन करती चिड़िया, तरल पीत द्रव, श्वेत कण, लाल-लाल मासूम बच्चे विचारोंमें तल्लीन मैं सो गया।

रातके दो बजे थे। मैं चीखकर उठ बैठा।

'नहीं, ऐसा मत करो। उसका कोई अपराध नहीं, भगवान्‌के लिये मुझपर दया करो। क्षमा कर दो मुझे।'

मैं रोया, गिड़गिड़ाया, प्रार्थना की, पर उस क्रूर विकराल दैत्यने मेरे मुन्नेकी टाँग पकड़कर जमीनपर पछाड़ दिया। वहीं कुछ पीला तरल पदार्थ और हड्डियोंके श्वेत कण मेरे सामने बिखर गये।

उफ़! कितना बीभत्स स्वप्न था। मेरी साँस जोरोंसे चलने लगी। पत्नी जाग गयी थी। मुन्ना बेहोश था।

'क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं।' मैंने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

'मुझे क्षमा कर दो प्रभो! मैंने यह सब जान-बूझकर नहीं किया था। इतना कठोर दण्ड न दो भगवन्! मैं सहन नहीं कर सकूँगा। मेरे बच्चेके प्राणोंकी भीख ! इस बार मुझे निर्दोष समझकर दया कर दो, देव!' मैं बच्चोंकी तरह फूट-फूटकर रो पड़ा और मेरी हिचकियाँ तब बन्द हुईं जब मुन्नेने आँखें खोलकर क्षीण आवाजमें कहा—'पानी।'

घटना कुछ समय पूर्वकी है। मुन्ना पहलेसे अधिक स्वस्थ है। उस समयसे मैं हमेशा इसी प्रयत्नमें रहता हूँ कि मुझसे कभी कोई निरपराध जीवकी हिंसा न हो जाय।

बाबा तुलसीदासकी एक ही चौपाई हर समय हृदयपर एक प्रहार करती जान पड़ती है और मैं पुनः अपने स्थानपर आ जाता हूँ पथ-भ्रष्ट होनेपर भी।

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

—मोहनलाल चतर

सहिष्णुता

जब कभी दिवाली आती है तो मेरे मानसमें एक विशेष प्रतिक्रिया होती है। सन् १९५३ में मेरे फूफाजी रामदेवरा स्टेशन (उत्तर रेलवे)-पर सहायक स्टेशनमास्टर थे।

दिवालीके दूसरे दिन प्राय: बच्चोंको पटाके छोड़नेको मिलते हैं। हमें भी परम्परानुसार पटाके मिले। बच्चोंमें विचारशक्ति तो होती नहीं। उनके लिये तो हर स्थल क्रीडालय है। मैंने और मेरी बुआके लड़केने मिलकर पटाके कमरेके अंदर ही छोड़ने शुरू किये। सहसा मेरे एक सम्बन्धीका बच्चा हाथमें ताराबत्ती लिये कमरेमें आ घुसा और लगा उसे घुमाने। कमरेकी अलगनीपर रेशमी तथा ऊनी वस्त्र और शाल लटक रहे थे। एक चिनगारी उनको छू गयी और बात-की-बातमें धू-धूकर सारे कपड़े जल गये। बच्चा होनेके कारण मैं आग बुझानेमें असमर्थ था, इसलिये 'लाय-लाय' कहकर मैं चिल्लाया। मेरी आवाज सुनकर मेरी फूफी आयी और उसने मटकेभर पानीसे आग बुझायी। कपड़े सब जल चुके थे। मेरे फूफाजी स्टेशनपर अपनी ड्यूटीपर थे। वे आये। अपनी गाढ़ी कमाईसे खरीदी हुई चीजोंका हाल देखा और सिर्फ इतना ही कहा—'जल गयी तो जल गयी। बच्चोंको पीटनेसे या भाग्यको कोसनेसे क्या होता है।'

उनके ये वचन मुझे आज भी स्मरण हैं। ५०० या ६०० रुपये का माल नष्ट होता देखकर भी जिसने उफतक न किया, वह देवता नहीं तो और क्या है।

—सुन्दरलाल बोहरा

परमिट

तीन दिनोंसे लगातार वर्षा हो रही थी। आज लोगोंने सूर्य-दर्शनका सौभाग्य प्राप्त किया। साइकिल मरम्मतके लिये दी हुई होनेसे आज मैं पैदल चलकर ही आफिस पहुँचा और क्लर्कोंके सलाम स्वीकार कर अपनी कुर्सीपर बैठ गया। कुछ ही देरमें एक गरीब-सा दीखनेवाला आदमी आया। उसने सीधे मेरे पास आकर कहा—'बाबूजी! परमिट काट दीजिये न, घरमें जगह-जगह पानी चू रहा है, घर जलसे भर गया है।' वह आशाभरी नजरसे मेरी ओर देखता रहा। मैंने कहा—'अर्जी दो, दो-एक दिनमें मिल जायगा।' उसने लाचारीभरे गुस्सेसे कहा—'बाबूजी! अर्जी तो कितनी ही बार दी जा चुकी है; परंतु न तो परमिट ही मिलता है, न कोई उत्तर ही।' मैंने कहा—'भाई! तुम्हारी सारी अर्जियाँ, पता नहीं कहाँ बह जायँगी और तुम्हें इस चौमासेमें आवश्यक सीमेंट अगले दो चौमासे बीत जानेपर भी नहीं मिलेगा।' वह एकदम निराश हो गया। मैंने फिर कहा—'यों अर्जियाँ देनेसे परमिट कभी नहीं मिलेगा। दो-पाँच रुपये हों तो निकालो, अभी परमिट काट दूँ।' वह निराश-मुख धीरे-धीरे चलकर आफिससे बाहर निकल गया। मैं भी अपने नित्यके काममें लग गया।

कुछ ही समय बाद एक बड़ी तोंदवाले सेठजी आये। मैं तुरंत उन्हें लेने सामने गया और मैंने कहा—'आपने क्यों तकलीफ की, कहला दिया होता तो मैं आपके घर आ जाता।'

'तकलीफ क्या है भाई! घरकी ओर जा रहा था तो मनमें

आया कि चलो भाईकी खबर पूछ आऊँ।'

'आपकी कृपा है।'

'ठीक है भाई, पर अपनी उन पचास बोरियोंका क्या हुआ?' सेठ आखिर मुद्देकी बातपर आ गये।

'तैयार ही हैं, आप न आये होते तो मैं स्वयं आकर आपको दे जाता।' मैंने विनयके साथ कहा।

'मैं तुम्हें भूलूँगा नहीं, अपनी रकम कल बँगलेसे ले आना।' सेठजीने कहा। तथा वे मुसकराते हुए आफिससे बाहर चले गये। मैं उन्हें पहुँचाने कारतक गया। सेठने मुझे फिर परमिटकी याद दिलायी और देखते-ही-देखते उनकी कार धूल उठाती हुई अदृश्य हो गयी।

शामको काम निपटाकर मैं बाहर निकला और टहलता हुआ चलने लगा। सेठसे मिलनेवाले पैसोंको किस काममें लगाया जाय—मेरा मन इसीकी उधेड़-बुनमें लगा था। आकाशमें मेघराजने अपनी सृष्टि-रचना आरम्भ की। कुछ ही क्षणोंमें गाजे-बाजेके साथ बरसात शुरू हो गयी। भाग्यकी बात, आज मैं छत्ता भी घर भूल आया था। इतनेमें आशाकी किरण-सरीखी सेठकी कार आती दिखायी दी। मैंने हाथ उठाकर कार रुकवायी और कहा कि 'घरकी ओर जाते हों तो मुझे ले चलें।' सेठने कहा—'दु:ख है, मुझे दूसरे कामसे जाना है' और रास्तेके कीचड़को उछालती हुई सेठकी कार पूरी चालसे चली गयी। मैंने सेठकी कारको अपने घरकी ओर मुड़ते दूरसे देखा। मेरे मनमें सेठके प्रति छिपा तिरस्कार पैदा हो गया। सेठके विचारोंको छोड़कर मैंने देखा तो मैं पूरा भींग गया था। चलते रहनेसे सर्दी लगनेका डर था, इसलिये मैंने रास्तेसे एक ओर जाकर एक

घरके छप्परके नीचे आश्रय लिया। 'बाबूजी! अंदर चले आइये न, आपका ही घर है।' घरके मालिकको प्रेमभरी आवाज सुनायी दी। मैंने देखा—जिसको मैंने दिनमें आफिससे फटकारकर निकाल दिया था, वही इस समय अपने घरमें बड़े प्रेमसे मेरा स्वागत कर रहा है।

मुझे बड़ी शरम आयी। मैं अंदर चला गया; देखा तो आधे घरमें पानी भर रहा था। एक ओर जरा-सी सूखी जगहमें एक बच्चा सोया था। वर्षा अभी मूसलाधार बरस रही थी। छत जगह-जगहसे चू रही थी। मकान-मालिककी आवाज सुनकर मैं विचार-तन्द्रासे जागा। वे कह रहे थे—'बाबूजी! आप भींगे कपड़े बदल लीजिये, नागजीकी माँ अभी भींगे कपड़ोंको सुखा लायेगी, उन्होंने मुझे एक धोती दी, मैंने अपने भींगे कपड़े बदले। थोड़ी ही देर बाद वे भाई गरम दूधका प्याला भरकर लाये और बड़ा आग्रह करके मुझे पिला दिया। कुछ समयके पश्चात् वर्षा बंद हो गयी। उनकी पत्नीने मेरे कपड़े ला दिये। कपड़े पूरे सूख नहीं पाये थे, पर मैंने उनको पहन लिया। मैं चलने लगा, तब 'जरा ठहरिये, मैं आपके साथ चलता हूँ। रात बहुत बीत गयी है।'—यों कहकर लाठी और लालटेन लेकर वे भाई मेरे साथ हो लिये। उनकी इस मृदुताने, अपकारके बदले उपकारने मुझे विचारोंमें डाल दिया। उस दिनका सारा दृश्य मेरी आँखोंके सामने खड़ा हो गया।

'तुम्हारे-जैसे गरीब आदमीको परमिट मिलना मुश्किल है' आदि मेरे अपमानके वचन और दीनभावसे मेरी ओर देखती हुई उनकी मूर्ति मेरे सामने खड़ी हो गयी। उनके प्रति इस प्रकारका बर्ताव करनेके लिये मेरा मन पश्चात्तापसे भर गया।

मैं विचार करने लगा—'क्या यह गरीब है? इसकी जान-पहचान नहीं थी, इसीसे मैंने इसको फटकार बताकर निकाल दिया। क्या यह गरीब मनुष्य नहीं है? क्या इसको सीमेंटकी जितनी जरूरत है, उतनी सेठको है? सीमेंट जहाँ इसकी अनिवार्य आवश्यकता है, वहाँ वह सेठ तो शायद सीमेंटका उपयोग नयी कोठी बनानेमें ही करता। इसको सीमेंट न मिले और कदाचित् बरसाती हवाका असर इसके बच्चेपर हो तथा वह बीमार पड़ जाय तो यह बेचारा दवाके पैसे कहाँसे लायेगा? इन विचारोंमें घर कब आ गया, इसका भी मुझे पता नहीं लगा।' घरकी सीढ़ियोंपर चढ़ते हुए मैंने उनसे कहा—'अपना सीमेंटका परमिट कल अवश्य ले जाइयेगा।' वे हर्षसे गद्गद हो गये। और मेरे पैरों पड़ने लगे। मैंने उनको तुरंत उठाकर कहा—'न तो मेरे पैरों पड़नेकी आवश्यकता है, न आभार माननेकी। आपने ही मुझको अपने सच्चे कर्त्तव्यका ज्ञान करवाया है।' उन्होंने कहा—'महाशयजी! मैं तो केवल निमित्त हूँ, होता तो सब कुछ ईश्वरकी इच्छासे है।' वह प्रसन्न होता अपने घर लौट गया। आज मैं पहली बार खूब गहरी नींद सोया। दूसरे दिन मैंने सेठका पचास बोरियोंका परमिट रद्द कर दिया।

—जशवंत शायर

भगवान् भक्तके साथ रहते हैं

सन् १९५८ की बात है। नैनीतालमें औद्योगिक प्रदर्शनी लगी थी। जिसमें जिला-उद्योग-अधिकारीकी आज्ञासे रामपुरकी औद्योगिक वस्तुओंको लेकर मैं भी उसमें गया था। उस समय मैं रामपुरमें मुख्य लिपिकके पदपर काम कर रहा था। वह प्रदर्शनी करीब आठ दिनोंसे अधिक रही । मैं भी वहीं रहा। एक दिन मैं वहाँकी सबसे ऊँची पर्वतीय चोटी चाइनापीक देखने गया। रास्तेमें मैंने देखा कि सड़क घूम-घामकर गयी थी। पर कुछ पहाड़ी लोग पहाड़ियोंसे उतरकर नजदीक रास्ते (Short cut)-से निकल जाते थे। इस प्रकार वे कई फर्लांगोंकी दूरी बचा लेते थे। मेरे मनमें भी यही विचार हुआ कि लौटते समय मैं भी इसी प्रकार नजदीकके रास्ते (Short cut)-से पहाड़ी उतरकर अपने मार्गको सुगम बनाऊँगा। अतः जब मैं लौटा तो मैंने भी ऐसा करनेका प्रयत्न किया। कई स्थानोंपर सफलता भी मिली। एक बार मैं भूलसे एक खड्डमें पहुँच गया और जब कुछ और आगे बढ़ा तो मैंने अपनेको करीब पाँच सौ फुटसे भी अधिक गहरे खड्डमें पाया; वहाँसे मुझे कोई रास्ता नहीं दिखायी दिया। मैं कुछ पीछेकी तरफ लौटा, किंतु यह समझ न सका कि उस गड्ढेमें किधरसे आया था। सूर्यभगवान् अस्ताचलकी ओर जा रहे थे। अब मैंने समझ लिया कि यहाँसे निकलना असम्भव है; क्योंकि दूर-दूरतक सिवा ऊँचे-ऊँचे पहाड़ी वृक्षोंके और कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा था। एक नदीका सोता था, जिसमें बड़े-बड़े पत्थर थे। मैंने विचार किया कि इन पत्थरोंके नीचे आज

रात गुजारी जाय, जिससे कोई जंगली जानवर मुझे देख न पाये। ऐसी जगहोंपर बाघ-बघेरोंका रहना स्वाभाविक होता है। जो छिपे मनुष्योंको भी गन्धसे मालूम कर लेते हैं। इधर रात हो रही थी; सिवा मरनेके और कोई चारा नहीं था। किंतु ऐसी स्थितिमें भी आदमीको कभी निराश नहीं होना चाहिये। मैं अपने-आपको भक्त तो नहीं कह सकता, परन्तु इतना जरूर कहूँगा कि जब कभी मैंने भगवान्को याद किया, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि भगवान् सर्वदा मेरे पास हैं। अतः आज भी मैं उस चश्मेसे जरा आगे बढ़ा और दो मिनटतक शंकरभगवान्को याद किया। मैंने सहज ही आर्त-भावसे कहा—'हे शंकरभगवान्! आप सर्वव्यापी हैं, फिर भी यह कहा जाता है कि कैलास पर्वत आपका निवासस्थान है। यह पर्वतीय प्रदेश भी उसी कैलासका एक भाग है। क्या आप नहीं देख रहे हैं कि मैं इस खड्डमें हूँ और थोड़ी ही देर बाद वन्य-पशुओंका आहार बननेवाला हूँ।' इसके बाद मैंने सामने नजर डाली तो क्या देखता हूँ कि एक लम्बा-चौड़ा आदमी सिरपर घासका गट्ठर रखे चला आ रहा है। मैंने उससे कहा—'भाई! मुझे मल्लीताल जाना है।' उसने कहा—'मेरे साथ चलो।' मैं दो ही मिनट उसके साथ चला और अपने-आपको मैंने बहुत ऊँचाईपर पाया। उसने कहा कि 'तुम इधरसे चले जाओ, मल्ली-ताल पहुँच जाओगे।' मैंने देखा कि 'मैं अकेला ही एक पहाड़ीपर हूँ।' मेरा वह मार्गदर्शक न जाने कहाँ ओझल हो गया। अब मुझको विश्वास हो गया कि वह मार्गदर्शक कोई पहाड़ी घसियारा नहीं था, बल्कि सहज कृपालु आशुतोष शंकरभगवान् ही स्वयं मुझे खड्डसे निकालने आये थे; क्योंकि उस खड्डमें कोई घसियारा घास लेने नहीं जा सकता।

मैंने अपना यह अनुभव पाठकोंके सामने केवल इसलिये रखा है, जिससे वे विश्वास करें कि इस कलिकालमें भी जिसमें चारों ओर पापोंके काले बादल छाये हुए हैं, भगवान् जरा-सा विश्वास रखकर पुकारते ही दीनोंकी—असहायोंकी रक्षा करते हैं।

—सरदारसिंह सिनहा

आनन्दका स्वर्ग उतर आया

एक दिन स्वर्गीय रफी अहमद किदवई साहब अपने घरके कार्यालयमें बैठे थे, इतनेमें एक गरीब-सा दिखायी देनेवाला आदमी वहाँ आया और गिड़गिड़ाने लगा।

'बाबूजी! मेरी लड़की जवान हो गयी है, उसका विवाह करना है; कुछ सहायता कीजिये। मैं गरीब आदमी हूँ। मेरी इज्जतका सवाल है।'

दीन, दलित, पतित और पीड़ित मनुष्योंके प्रति सहानुभूति रखनेवाले और उनकी सहायता और सेवाके लिये तत्पर श्रीकिदवई साहबने उसको तुरंत पाँच सौ रुपये दे दिये और शेष रकमके लिये उन्होंने मित्रोंके लिये पत्र लिख दिये। पत्र लेकर वह आदमी किदवईजीके एक मित्रके पास पहुँचा। पर वे मित्र तो इस बनावटी भिखारीको पहचानते थे, अतएव वह भिखारी चिट्ठी वहीं छोड़ तुरंत ही चलता बना। चिट्ठी पढ़कर मित्रको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने तुरंत ही फोन उठाया। पर किदवई साहब नहीं मिले। उसी दिन शामको वे मित्र किदवई साहबके घर जाकर उनसे मिले और उस गरीब-से दिखायी देनेवाले आदमीके सम्बन्धमें सब बातें बताकर कहा—

'किदवईजी! वह आदमी तो आपको भी उल्लू बना गया। उसका तो विवाह ही नहीं हुआ, तब उसकी लड़कीका विवाह कहाँ होता?'

किदवई साहबने बिना किसी आश्चर्यके जवाब दिया— 'बेचारेपर कोई खास विपत्ति पड़ी होगी, इसलिये उसने ऐसा

काम किया होगा। प्रभु उसको सद्बुद्धि दें।'

एक बनावटी और आवारा आदमीके प्रति इतनी बड़ी विशाल उदारता और विश्वासयुक्त श्रद्धाको देखकर वे मित्र तो आश्चर्यमें डूब गये।

इस घटनाके लगभग दस माहके बाद किदवई साहब और उनके मित्र बगीचेकी ओर जा रहे थे। पीछेसे कोई बुला रहा हो ऐसा लगा। उनके मित्रने घूमकर देखा तो सामनेके बड़े होटलसे कोई उन्हें पुकार रहा था।

दोनों वहाँ गये। दोनों ही चकित रह गये। वही आदमी होटलके मालिकके रूपमें बैठा हुआ था। नीचे उतरकर वह दोनों महानुभावोंको ऊपर ले गया और उसने बड़े ही सत्कारके साथ उनका स्वागत किया। किसीके कुछ पूछनेके पहले ही सारी कथा बता दी। कथा सुनकर किदवई साहबको बड़ा ही हर्ष हुआ। उसे उन्होंने छातीसे चिपका लिया। उन मित्रसे नहीं रहा गया और वे पूछ बैठे—'अच्छा भाई! तू इतना बड़ा आदमी किस तरह बन गया? तेरा धंधा तो सब........।'

'बाबूजी! माफ कीजिये। वह धंधा तो सब कभीका छूट गया। कोई काम-धंधा न होनेके कारण मैंने झूठ बोलकर किदवई साहबसे मदद माँगी थी। सुन रखा था कि किदवई साहब हमदर्द, उदारहृदय और दयालु हैं। उनकी हमदर्दी और सहायताने तो जादू ही किया। उनके धनसे कुमति और बुरे धंधेकी बात सूझी ही नहीं। आरम्भमें मैंने चायकी रेहड़ी चलायी। दो-चार महीनोंमें ही मेरी इज्जत जम गयी और मैं जल्दी ही इस होटलका मालिक बन गया।

किदवई साहब अपलक नेत्रोंसे उसकी ओर देखते ही रहे।

वे उसपर बहुत ही प्रसन्न हुए. इस प्रसन्नताकी झलक उनके चेहरेपर चमकने लगी। इसका अक्स उस आदमीकी आँखोंमें दिखायी दिया और उसकी आँखोंसे भी हर्षाश्रुओंकी गंगा-यमुना बहने लगीं। इस गंगा-यमुनामें उसने झूठ बोला था—इसके लिये पश्चात्तापरूपी सरस्वतीका भी अदृश्य संगम हो रहा था। मानो आनन्दका स्वर्ग उतर आया। 'अखण्ड आनन्द'

—तुलसीदास एच० गोडलिया

पर-धन विषके समान

मरणासन्न वृद्धाकी चारपाईके चारों ओर अपने और परायोंकी भीड़ लग गयी थी। आजतक जिन्होंने वृद्धाकी कुशल-क्षेमतक पूछनेका कष्ट नहीं किया था, वे ही आज उसके धनके कारण उसकी परलोक-यात्राके समय अत्यन्त भग्न-हृदयोंका स्वाँग रचे, मुँह लटकाये बैठे थे, मानो मुसीबतोंका पहाड़ उन्हींपर टूट पड़नेवाला है। बोलते-बोलते वृद्धा एक स्थानपर तनिक लड़खड़ा गयी, मानो गाड़ीके सामने कोई अचानक आ जाय; किंतु जैसे कुशल ड्राइवर जिस प्रकार तत्क्षण ब्रेक लगाकर गाड़ीको पुनः सावधानीपूर्वक आगे बढ़ा ले जाता है, वैसे ही वह उस बातको छोड़ती हुई आगे बढ़ गयी। परिजनोंने बहुतेरा प्रयास किया कि वह कहनेमें कुछ संकोच न करे; किंतु वृद्धा उस बातको एकदम टाल ही गयी। जो बात उसके होठोंपर आकर जम गयी थी, वह अन्ततक नहीं पिघली और अस्सी वसंतोंका पराग पीकर वृद्धा अन्य लोककी यात्रापर निकल गयी।

बात आयी-गयी, हो गयी। कुछ वर्ष पश्चात् उस वृद्धाके वारिसको ८३२ रुपयेका एक मनीआर्डर प्राप्त हुआ। प्रेषित करनेवालेने जो नाम-पता दिया था, उसपर वारिसने ढूँढ़नेका बहुतेरा प्रयास किया; किंतु उसे सफलता न मिली। मनीआर्डर मिलनेके तीन-चार दिन पश्चात् ही उसे एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें लिखा था—

'प्रिय श्री........

आपको स्मरण होगा, आपकी दिवंगत माताजी (आपने उन्हें

उनकी मृत्युसे कुछ समय पूर्व इसी नामसे पुकारना प्रारम्भ कर दिया था) मरणासन्न घड़ीमें लेन-देनका ब्योरा बतलाते समय एक स्थानपर तनिक लड़खड़ा गयी थीं। मैं यद्यपि उस समय वहाँ उपस्थित नहीं था, किंतु उस समयका हूबहू वर्णन मैंने आपके कुटुम्बके एक अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्तिसे सुना था। सुनकर लगा था मानो उस लड़खड़ा देनेवाले स्थलसे मैं ही सम्बन्धित था। दरअसल मैं उनसे समय-समयपर कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त करता था। यहाँ मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि अल्पायुमें ही मेरे सिरसे माँ-बापकी छाया उठ चुकी थी। पिताके देहान्तका मुझे कुछ स्मरण नहीं है। माँने मेरा आपकी माताजीसे साक्षात्कार कराकर भविष्यमें कुछ आर्थिक सहायता पानेका आश्वासन प्राप्त कर लिया था। उसी आश्वासन-सूत्रके सहारे मैं अपने अध्ययनरूपी रथको आगे बढ़ाता रहा। आपकी माताजीके स्वर्गस्थ होनेके समय मैं बी० ए० अन्तिम वर्षका छात्र था। उसके पश्चात् मैंने ट्यूशन आदिके सहारे एम्० ए० किया और अब एक महकमेमें नौकर हूँ।

मैंने आपकी माताजीसे कक्षा आठसे बारहतक कितने रुपये लिये, इसका हिसाब शायद उन्होंने नहीं रखा; क्योंकि मुझे वे सदैव पुत्रवत् मानती थीं। किंतु मेरी अपनी माताजी मुझे पाई-पाईका हिसाब रखने और उसे चुकानेका आदेश दे गयी थीं। पाँच वर्षकी अवधिमें मैंने उनसे लगभग ३८० रुपये लिये थे।

'यह नितान्त सम्भव है कि आप इसपर विश्वास न करें कि मैंने पाँच वर्षमें सिर्फ ३८० रुपये ही उनसे लिये हों; किंतु बन्धु! इस विषयमें मैं अपनी माताजीके आदेशानुसार बहुत सतर्क रहा हूँ। कुछ तो माताजी छोड़ गयी थीं। कुछ मैं देखकर कार्य करता

था। अब उन रुपयोंको, जिनका मूल-ब्याज आदि सब मिलाकर ८३२ रुपये होते हैं, मैं आपको सकृतज्ञ हृदयसे प्रेषित कर रहा हूँ।

'मुझे ढूँढ़नेका प्रयास मत कीजियेगा; क्योंकि इसमें आपको सफलता प्राप्त न होगी।'

छल-कपट, झूठ-फरेब, बेईमानी और भ्रष्टाचारके गोरखधंधेमें फँसे इस युगमें उपर्युक्त प्रकारके परधनको विषके सदृश समझनेवाले पुरुष निश्चय ही वन्दनीय हैं। उन्हें शतशः प्रणाम।

—गोपालकृष्ण जिंदल

आदर्श संस्कार

जापानकी राजधानी टोकियोमें शिशुपाठशालामें एक विद्यार्थी पढ़ता था। एक दिन पाठशालासे घर जाते समय रास्तेमें उसने एक रुपया पड़ा देखा। उसने रुपया उठा लिया; पर तुरंत उसे अपनी माँकी यह बात याद आ गयी कि 'हमें कहीं कुछ मिले तो यह समझना चाहिये कि वह चीज किसी व्यक्तिकी खोयी हुई है। अतः उसे स्वयं न लेकर पुलिसको सौंप देना चाहिये।'

वह लड़का उस रुपयेको घर न ले जाकर सीधा पुलिस-थानेमें गया और वहाँके दारोगाजीसे बोला कि 'यह रुपया लीजिये, मुझे रास्तेमें मिला है। अतएव यह रुपया सरकारी खातेमें जमा कर लीजिये।' किंतु दारोगा साहबने आलस्यवश सरकारी खातेमें रुपया जमा नहीं किया। उन्होंने सोचा—'एक रुपयेके लिये कौन इतनी माथापच्ची करे।' अतएव उन्होंने उस बच्चेसे कहा—'दोस्त! तुमने बड़ा अच्छा काम किया है। इसके लिये मैं तुमको शाबाशी देता हूँ और यह रुपया भी इनामके तौरपर मिठाई खानेके लिये देता हूँ।'

छोटा बच्चा कुछ समझा नहीं। वह रुपया लेकर घर आया और उसने माँके हाथमें रुपया दे दिया। माताने बच्चेसे पूछा—'तू रुपया कहाँसे लाया है ?' बच्चेने सारी बात बताकर कहा—'दारोगाजीने मिठाई खानेके लिये मुझको रुपया वापस दे दिया।' इस बातको सुनकर माताको दारोगापर बड़ा गुस्सा आया। वह उनके पास गयी और बोली—'आपने मेरे बच्चेको रुपया वापस किसलिये दिया? इससे तो यह बच्चा दूसरोंके पैसोंसे मिठाई

खानेके लिये चोरीका धंधा सीख जायगा।'

इसके बाद उस बहिनने पुलिसके बड़े अधिकारियोंके सामने फरियाद की। पुलिसके बड़े अधिकारीने दारोगासे पूछा, तब उन्होंने कहा—'मैंने तो इसकी ईमानदारीको देखकर रुपया इनाममें दिया था।'

तब बड़े अधिकारीने दारोगासे कहा—'यदि आपको इनाम देना था तो अपनी जेबसे देना चाहिये था। सचमुच ही आपने इस बच्चेको अनुचित पाठ पढ़ाया है, इसलिये आपको नौकरीसे बर्खास्त किया जाता है।'

जहाँ ऐसी ईमानदारी हो और बालकोंको ऐसे आदर्श संस्कार दिये जाते हों, वह देश उन्नत और समृद्ध हो तो इसमें क्या आश्चर्य? 'अखण्ड आनन्द'

—लल्लूभाई ब० पटेल

पश्चात्ताप

बात आजसे कुछ साल पहलेकी है और कलकत्ताकी है। मैं उन दिनों प्राय: कलकत्ते जाता और महीनों वहाँ रहा करता था।

कलकत्ताके भवानीपुर क्षेत्रमें पंजाबी साहित्यिकोंकी एक संस्था भी थी—'कविकुटिया'।

'कविकुटिया'का अपना एक छोटा-सा प्रेस था और एक मासिक पत्र निकलता था पंजाबीमें—'कवि'।

संस्था थी तो वैसे साहित्यिक ही और वहाँ पंजाबी साहित्यकी श्रीवृद्धिके लिये ही सोचा-विचारा और उद्योग किया जाता था, पर सरकारको संदेह था कि यह एक छल है, धोखा है। वास्तवमें यह नये तथा पुराने और खास करके पंजाबी क्रान्तिकारियोंका अड्डा या केन्द्रस्थल है। क्योंकि इसके प्रधान और 'कवि' के सम्पादक थे—गदर पार्टीके प्रमुख कार्यकर्ताओंमेंसे एक सरदार मुन्शासिंहजी 'दु:खी' जो फाँसीके फंदेसे बचकर जेलकी लंबी सजा काटकर आये हुए थे।

दूसरे, यहाँ—चाहे साहित्यिक कार्यों और आमोद-प्रमोदके लिये ही सही—प्राय: नये और पुराने देशभक्तोंका आना-जाना भी बराबर रहता था।

जो लोग यहाँ जल्दी-जल्दी आकर, घंटों बैठकर और घुल-मिलकर बातें किया करते थे—पुलिस उनपर कड़ी नजर रखती थी।

ऐसे लोगोंमें मैं भी एक था। मैं 'दु:खी' जीको अपना बड़ा भाई समझता था और अब भी समझता हूँ। उनके पत्र 'कवि' में कभी-कभी लिखता भी था। फिर मैं पुलिसकी दृष्टिमें दूधका

धुला था भी नहीं। कुछ संदेह स्पष्ट ही था। ऐसी दशामें मुझपर भी पुलिसकी दृष्टि रहना अनिवार्य-सा था।

एक दिन कविकुटियासे होकर मैं भवानीपुर क्षेत्रमें ही स्थित एक साधारणसे होटलकी ओर जा ही रहा था कि पीछेसे आकर किसीने मेरे कंधोंपर हाथ धरते हुए बड़े प्रेमसे पूछा—'खन्ना साहब! कहाँ जा रहे हैं?' इसके पहले कि मैं कुछ कहता, वह कहने लगा—'दीदीके पास? मेरी दीदीके पास? चलिये मैं भी वहीं जा रहा हूँ। वह कलसे यहाँ आयी हुई है और शायद आपका ही इंतजार कर रही है।'

वह एक बड़ा आकर्षक बंगाली नौजवान था। सफेद खादीके वस्त्र, सिरपर गाँधी टोपी, पैरोंमें चप्पल और माथेपर गौड़ीय सम्प्रदायका नाकतक लगा सफेद चन्दनका तिलक।

वैसे मैंने उसे एक-दो बार कविकुटियामें भी देखा था और काँग्रेसके जलसे-जुलूसोंमें भी इंकलाब जिन्दाबादके जोर-जोरसे नारे लगाते हुए भी। पर उससे मेरी सीधी जान-पहचान कोई न थी।

मैं बड़े विस्मयमें था कि इसे कैसे पता है, मैं कहाँ जा रहा हूँ।

मैं मन्द मुसकानके साथ, 'अच्छा चलिये'—कहकर उसके साथ हो लिया।

पहुँचे उस होटलमें जहाँ मैं जा रहा था। वहाँ आयी हुई थी एक अद्‌भुत महिला—कुसुमकुमारी।

साधारण लोग कुसुमकुमारीके विषयमें केवल इतना ही जानते थे कि वह एक नर्तकी है और नाचनेके लिये कहीं बाहरसे आती है। जहाँ भी प्रोग्राम मिल जाता है, ले लेती है—यहाँतक कि किसी वेश्यालयमें भी।

इसके साथ ही पुलिसकी धारणा एक दूसरी भी थी।

पुलिसकी धारणा थी कि यह एक क्रान्तिकारी विचारोंकी महिला है और क्रान्तिकारियोंके साथ इसका सम्बन्ध है। नाचनेके लिये आना तो उसका एक बहाना है। वास्तवमें वह क्रान्तिकारियोंके ही किसी कामके सिलसिलेमें यहाँ आया करती है। अस्तु,

मेरा-इसका प्रेम था और वह प्रेम था—सर्वथा वासनारहित पवित्र। मैंने बुद्धधर्म इसीकी प्रेरणासे स्वीकार किया था। यह स्वयं किसी सम्प्रदायविशेषसे निकलकर बुद्धधर्ममें प्रविष्ट थी।

आजसे करीब बत्तीस वर्ष पहले मैंने हिन्दीमें एक पुस्तक लिखी थी—गौतम बुद्ध। उसमें भी इस अद्‌भुत महिलाके विषयमें उल्लेख किया गया था।

जाते ही उसने कहा—'दीदी! ओ दीदी!! देख, मैं आज किसे साथ लाया हूँ। यही हैं न, जिनकी तुम आज प्रतीक्षा कर रही थी? ये कविकुटियामें भी जाते हैं और काँग्रेसके जलसे-जुलूसोंमें भी। तुम तो इनके विषयमें बहुत कुछ जानती होगी; पर मैं इतना ही जानता हूँ कि ये बहुत अच्छे आदमी हैं। फिर बहुत अच्छे आदमियोंके सिवा और कोई तुम्हारे सम्पर्कमें आ भी तो नहीं सकता। तुम स्वयं भी तो बहुत अच्छी हो।'

कुसुम हँसकर बोली—'अच्छा, ये बहुत अच्छे हैं? मैं तो इन्हें नहीं जानती। तुम्हें आदमीकी बड़ी पहचान है। जरा अच्छा देखा कि उसे सम्पर्कमें ले लिया। अच्छा, यह तो बतलाओ कि मेरे साथ इन्हें कब देखा था?'

'देखा था'—कहकर बात समाप्त करते हुए उसने चायका आर्डर दिया और चाय आ गयी।

चाय-पान समाप्त होते ही वह उठकर बोला—'अच्छा मैं चलता हूँ। ये तो आपके पास बैठेंगे ही।' वह चला गया।

कुसुम एक खास अनुमानसे मुसकराती हुई बोली—'ये आपको कहाँसे पकड़ लाये!' मैंने कहा—'आपके पास आनेको।'

वह बोली—'इसकी बातोंसे तथा इसके कुछ कार्य-कलापोंसे तो यह बहुत अच्छा नौजवान लगता है। कामका प्रतीत होता है। यह तो आप जानते ही हैं, किसीपर अन्धश्रद्धा रखनेकी मेरी आदत ही नहीं है, फिर भी कुछ रखती जरूर हूँ। अन्धी नहीं तो सुन्दर नयनवाली।'

यह आपके सम्पर्कमें कैसे आया—यह मैंने नहीं पूछा।

थोड़ी-बहुत और इधर-उधरकी या हँसी-मजाककी बातें होनेके बाद कलाईकी ओर देखती हुई बोली—'अब चलना चाहिये, समय हो चला है।'

हम दोनों उठ खड़े हुए और होटलसे बाहर निकल आये। निकलनेसे पहले चाय वगैरहका बिल देनेके लिये मैं मैनेजरके पास पहुँचा तो वह बोला—'बिल चुकता कर गये थे आपके वे साथी महाशय।' मैंने कहा 'खूब।'

अब हम दोनों बस-स्टैंडपर आये और एक बसमें बैठकर बड़ा बाजारमें आ गये। वहाँसे वह तो हाबड़ा पुलकी ओर पैदल चल दी और मैं अपने स्थानको चला आया।

इस दिनके बाद लगभग पाँच महीनेतक मैं कलकत्तामें रहा, पर वह नहीं आयी।

वह जब आती थी, तब जितने दिन भी कलकत्तेमें रहती थी, स्थायीरूपसे तो पता नहीं कहाँ रहती थी, पर मिलने-जुलनेवालोंसे वह उपर्युक्त होटलमें ही मिला करती थी।

मैं उसी होटलमें पता लगाता रहता था। न होती थी तो होटलके एक नौजवानको मैं अपना नाम-पता दे आता था और

वह उसके आनेपर उसे दे देता था। तब वह मुझे बुला भेजती थी।

फिर जबतक वह कलकत्ता रहती थी, मैं उससे प्रायः प्रतिदिन मिल लिया करता था और कभी-कभी उसके प्रोग्राममें भी शामिल हो जाता था।

अब फिर आया मैं लगभग दो महीनेके बाद और प्रायः एक सप्ताह बाद मुझे सूचना मिली उसके आनेकी, तब मैं उससे मिलने चला गया।

आजकी हमारी मुलाकात, बादमें पता लगा कि अन्तिम मुलाकात थी। फिर कोई मुलाकात नहीं हुई। वह रही ही नहीं संसारमें। नदियामें उसका देहान्त हो गया।

आज मेरे बैठते ही उसने कहना शुरू कर दिया उस बंगाली नौजवानके विषयमें, जो पिछली बार अपनी ओरसे मुझे यहाँ पहली बार उससे भेंट कराने लाया था। वह उसे एक देशभक्त नौजवान समझती थी और मैं भी उसे बुरा नहीं समझता था, घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखता था। कभी मिल जाता था तो प्रेमसे अभिवादन हो जाता था, यद्यपि वह चाहता था मेरे साथ घनिष्ठता बढ़ाना और मुझे अपने दृढ़ विश्वासमें लाना। अस्तु,

वह बोली—"खन्ना साहब! मैं बड़ी भावुक हूँ, भोली हूँ, मासूम हूँ या यों कहिये खतरनाक हूँ—उन लोगोंके लिये जो सहसा किसीपर विश्वास नहीं कर लेते, किसीको अपने सम्पर्कमें नहीं ले लेते। पर मैंने ले लिया उस नौजवानको अपने विश्वासमें, अपने सम्पर्कमें, जो पिछली बार आपको मेरे पास लाया था। फलतः मैं डरती हूँ, मेरे कारण देशकी कोई हानि न हो गयी हो।

आप सुनकर आश्चर्यान्वित होंगे कि वह नौजवान न काँग्रेसी था न क्रान्तिकारी। वह तो पुलिसका एक वेतनभोगी मुखबिर

था, जो हममें विश्वास पैदा करके हमारे सम्पर्कमें आया हुआ था।

किसीने उसके बारेमें इस बातको नहीं जाना। उसने खुद ही मरते-मरते मुझे बतलाया था। संयोगसे मैं उन दिनों कलकत्ता आयी हुई थी।

मेरे कई ठिकानोंका उसे पता था। एक दिन मैं हंसपोखर लेनके एक ठिकानेपर टिकी हुई थी कि दस-बारह वर्षका एक लड़का मेरे पास आया। उसकी आँखें डबडबायी हुई थीं। रुँधे हुए कण्ठसे वह बोला—'हालदार बाबू आपको याद करते हैं।'

मैं जानती थी उसका नाम मनोरंजन हालदार है और एक-दो बार इस लड़केको भी उसके साथ देखा था—'मैं हो ली उसके पीछे-पीछे।'

लड़का मुझे एक घरमें ले गया। वहाँ हालदार चारपाईपर लेट रहा था। मुझे देखते ही वह ज्यों ही मेरे पैर छूनेको चारपाईसे उतरा कि बेहोश होकर गिर पड़ा। घरवालोंने उसे सँभाला और फिर चारपाईपर लिटा दिया। होश आनेपर उसने फिर उठनेका प्रयत्न किया, पर मैंने दौड़कर उसे कंधोंसे पकड़ लिया और कहा—'बैठे रहिये, लेटे रहिये, भाई साहब! मैं आ गयी हूँ। कहिये, कैसी तबीयत है? क्या बात है?'

उसने घरवालोंसे कहा—'आप सब जरा दूसरे कमरेमें चले जाइये।'

चले गये तो वह आँखोंसे अश्रुपात करता हुआ रुँधे कण्ठसे बोला—'दीदी! मैं बड़ा अपराधी हूँ, बहुत पापी हूँ, बड़ा विश्वासघातक हूँ, मैंने वर्षों आपलोगोंको धोखा दिया है, देशवासियोंसे गद्दारी की है। मैं न काँग्रेसी हूँ न क्रान्तिकारी। मैं तो पुलिसका वेतनभोगी एक मुखबिर हूँ।'

मैं मर रहा हूँ और मेरे पाप मेरे सामने काँप रहे हैं। भयंकर रूपसे ये नाच रहे हैं। न जाने मुझे किस नरकमें जाना होगा। अवश्य ही मुझे अनेक यातनाएँ मिलेंगी। भगवान् मुझे कभी क्षमा नहीं करेंगे। पर तुम तो क्षमा कर दो। तुम्हारे क्षमादानसे मुझे पर्याप्त सान्त्वना मिलेगी।

मैंने उसके सिरपर हाथ धरते हुए कहा—'यदि मेरे क्षमा कर देनेसे आपको कुछ सान्त्वना मिल सकती है तो मैं आपको हृदयसे क्षमा करती हूँ।'

वह संतोषकी साँस लेता हुआ बोला—'दीदी! मैंने जीवनभर कोई नेक काम नहीं किया है। आज एक काम कर जानेका विचार है। आपको चेतावनी देता हूँ कि आप बालीगंजवाले तारासिंहसे सावधान हो जाइये। वह भी मेरे-जैसा ही और मुझसे भी पुराना पापी है।' कहते-कहते उसने दम तोड़ दिया।

मैं उसके इस हृदय-परिवर्तनको, यद्यपि चाहती हूँ कि वह इससे बहुत पहले हो जाता, फिर भी उपयोगी और प्रशंसनीय ही समझती हूँ।

ठीक ही तो है। मनुष्य कभी भी अपनी भूल स्वीकार कर ले, कभी भी अपने किये कुकर्मोंपर पश्चात्ताप कर ले तो अभिनन्दनीय ही है, कल्याणकारी ही है।

इससे उसका अपना शेष जीवन तो चाहे कुछ क्षणोंका ही मेहमान क्यों न हो—शुद्ध और पवित्र हो ही जाता है। साथ ही वह दूसरोंके लिये भी प्रकाशका काम भी दे जाता है। दूसरे भी इससे सबक सीख सकते हैं, शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

—गुराँदित्ता खन्ना

प्रलोभनपर विजय

हमारे एक प्रेमी सज्जन धार्मिक औषधालय चला रहे हैं। उन्होंने अपने औषधालयके लिये एक पुरानी आलमारी खरीदी थी।

आलमारी बहुत दिनोंसे काममें ली जा रही थी, पर उस आलमारीके अंदरके तहखानेकी बात उनको मालूम नहीं थी। हमारे उन मित्रने वह आलमारी अपने एक मित्रको सब ओरसे दिखलायी, तब उनकी नजर उस तहखानेपर पड़ी। तहखाना खोला गया और उसे देखते ही सब आश्चर्यमें डूब गये। लगभग सात सौ रुपये नगद, चार सौ तोले सोनेके गहने और दस-बारह हजारके शेयरके सर्टिफिकेट उसमें थे। उनके मित्रने कहा—'इतनी बड़ी जोखिम घरमें क्यों रखते हो? पर मेरे मित्रके पास तो अपनी सम्पत्ति थी ही कहाँ? फिर भी वे चाहते तो इस समय इस तहखानेमें निकली रकमको अपनी कहकर अपनी बना सकते थे, पर उनकी ईमानदारी जाग्रत् थी। ईमानदारीने प्रलोभनपर सहज विजय प्राप्त की।

उन्होंने देखा शेयर सर्टिफिकेटोंपर जो नाम पड़े थे, वे एक रोगीके थे। वे जब बम्बईमें नौकरी करते थे, उस समय इन शेयरोंवाले रोगीके साथ उनकी जान-पहचान हो गयी थी। वे उसकी खोज करने बम्बई गये, पर रोगीकी तो मृत्यु हो चुकी थी, इसलिये उसकी पत्नी और बालक, बम्बई छोड़कर अमरेलीमें जा बसे थे। घरके फर्नीचर बेचे गये थे, परंतु पतिने स्त्रीको इस सम्पत्तिकी बात बतायी नहीं थी। स्त्रीकी हालत बहुत बुरी हो चुकी थी।

हमारे मित्रने बम्बईमें उन सज्जनके पड़ोसीसे अमरेलीका पता प्राप्त करके उसकी स्त्रीको पत्र लिखा। उसकी स्त्री आयी और उसने इस सम्पत्तिसे अपने डूबते हुए फर्मको बचाया और वह इस साधारण व्यक्तिकी इतनी ईमानदारी देखकर गद्गद हो गयी। इस ईमानदारीने एक विपत्तिग्रस्त कुटुम्बका उद्धार कर दिया। 'अखण्ड आनन्द'

—हंसमुख ए० गाँजावाला

पूर्ण निर्भरतायुक्त नाम-जप तथा प्रार्थनाका आश्चर्यजनक फल और दूधवालेकी आदर्श निर्लोभिता

मेरे पतिदेवने एक होटल चलाया था। पर उसमें घाटा हो गया और लगभग दो हजार रुपये दूकानदारोंका कर्ज चुकाना बाकी रह गया। वे लोग बार-बार तकाजा करने लगे। इससे तंग होकर मेरे पतिदेवने एक वर्षका समय माँग लिया और गाँवसे दूर एक कुटिया बनाकर उसमें रहने लगे। सब ओरसे निराश होकर उन्होंने ऋणमुक्तिके लिये भगवान्‌से ही अर्थलाभके निमित्त प्रार्थना करना उचित समझा और वे आर्त होकर भगवान्‌को पुकारने लगे। समय जाते देर नहीं लगती। ११ महीने २१ दिन बीत गये। कहींसे भी कोई अर्थलाभ नहीं हुआ। उनकी कर्ज चुकानेकी अवधिमें केवल नौ दिन शेष रह गये। महाजनोंने जोरसे तकाजा शुरू किया। उन्होंने कहा—'भाई! यह कलियुग है, इस युगमें भगवान् मर गया है। जब परिश्रम किये बिना भोजन भी नहीं मिलता, तब तुम-जैसे आलसी बनकर बैठनेवालेका कर्ज भगवान् चुका देगा—यह सोचना ही मूर्खता है। भगवान् है कहाँ? अब यदि आजसे नवें दिन तुम हमारा कर्ज नहीं चुका दोगे तो हम बीच बाजारमें जूतोंसे मारकर तुम्हारी इज्जत बिगाड़ेंगे। तुम्हारा भगवान् कहाँ है, यह हम भी देखेंगे।' मेरे पतिदेवको बात बुरी तो लगी, पर वे क्या करते।

मेरा हृदय इसे सहन नहीं कर सका, तब मैंने उन महाजनोंसे नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहा—'भाई! आप सब कृपापूर्वक मेरे पतिदेवको दस दिनका समय मेरे कहनेसे और दें। इसके बाद मैं आपलोगोंके घर जाकर आपका पैसा-पैसा कर्ज चुका दूँगी। ऐसा न हो तो आप मेरे पतिके साथ ही मुझको भी जूतेसे मार सकते हैं।' उन्होंने पूछा—'आपका कौन है जो कर्ज चुका देगा?' मैंने कहा....मेरा एक सगा भाई है, वह धनाढ्य है, वही मेरा कर्ज चुकायेगा।'

वे लोग लौट गये। मेरे पतिदेवने पूछा—'बम्बईमें तुम्हारा भाई कौन है।' मैंने कहा—'भगवान् ही मेरा भाई है, मैं उसीसे माँगूँगी।' मेरे पतिदेवको मेरी बातपर कैसे विश्वास होता, पर उपाय भी क्या था! उन्होंने कहा—'जैसी भगवान्की इच्छा।'

तब मैं गीताप्रेससे प्रकाशित 'सीताराम-भजन'की पुस्तिका लेकर मौन (सांसारिक बातोंके लिये) होकर अखण्डरूपसे (निद्राके चार घंटे छोड़कर) सतत नाम-स्मरण करने लगी। दस दिनोंतक सतत यह क्रम चला। दसवें दिन बम्बईसे एक दूधवाला 'भैया' आया। बम्बई छोड़ते समय उसके चालीस रुपये हमें देने थे। मेरे पतिने पाँच-पाँच रुपयेके आठ प्राइज बाण्ड (Prize bond) खरीदे थे। रुपये न होनेसे उनके बदलेमें वे आठों 'प्राइज बाण्ड' उसको दे आये थे। उसने आकर कहा कि 'भाई! तुम्हारे इनामी बाण्डपर ७,५०० रुपयेका इनाम मिला है। वही रुपये मैं लेकर आया हूँ।' हमलोग तो सुनकर आश्चर्यचकित और गद्गद हो गये। उसने अपने चालीस रुपये और आने-जानेका रेलभाड़ा काटकर शेष सब रुपये हमें दे दिये और वह लौट गया। भगवान्ने अपने नामकी महिमा सिद्ध की और हमारी इज्जत

बचा दी। हम उस दूधवाले भैया[१]के भी अत्यन्त कृतज्ञ हैं और इस घोर अर्थ-पैशाचिकताके युगमें उसकी ऐसी ईमानदारीकी प्रशंसा करते हैं, जो जरा भी लालचमें नहीं पड़ा और पूरे रुपये तुरंत दे गया।[२]

—के० लक्ष्मीदेवी

---

१. बम्बईकी ओर दूध बेचने तथा दरवानी आदि करनेवाले उत्तरप्रदेशीय तथा बिहारी भाइयोंको 'भैया' नामसे पुकारते हैं।

२. यद्यपि परिश्रम—उद्योग न करके यों बैठना सबके लिये उचित नहीं है। अतः हम उसका समर्थन नहीं करते। उद्योग अवश्य करना चाहिये तथापि पूर्ण निर्भरता होनेपर भगवान् अवश्य ही फल देते हैं, इसके प्रमाणरूपमें ही यह घटना छापी गयी है।

—सम्पादक

मनुष्यको मृत्युका ग्रास बनते कैसे देखा जाय ?

धीमु भाई परोपकारी और दयायुक्त सहृदय डॉक्टर थे। विदेशसे लौटे डॉक्टर होनेपर भी उनके व्यक्तित्वमें दूसरेको सुखी करनेकी कला और कठोरताके बदले नम्रता तथा सरलता टपकी पड़ती थी।

उन्होंने एक साइकिल ले रखी थी, उसपर दवाका बैग लेकर वे आस-पासके गाँवोंमें जाते। वहाँ बीमार ग्रामीणोंकी दवा करते, उन्हें आश्वासन तथा धीरज देते और हँसी-खुशीकी बातें करते! रात-बिरात कभी भी अकस्मात् कोई ग्रामीण बुलाने आता तो बिना जी चुराये वे अपनी नींद हराम करके हँसते-मुख उसके साथ चले जाते।

जोरके जाड़ेकी आधी रातके समय किसीने आकर दरवाजा खटखटाया। डॉक्टरने दरवाजा खोल दिया।

डॉक्टरको देखते ही आया हुआ ग्रामीण उनके पैरोंपर गिर पड़ा और गिड़गिड़ाकर कहने लगा—'मेरे भाईको संनिपात हो गया लगता है। आप चलियेगा? आपकी दवासे कदाचित् उसकी जान बच जाय....।'

डॉक्टरने तुरंत ही दवाका बैग साइकिलपर रखी और वे उस ग्रामीणके साथ जल्दीसे चल पड़े।

दूसरे दिन दोपहरके साढ़े बारह बजनेपर भी डॉक्टर नहीं लौटे तब उनकी पत्नीको बड़ी चिन्ता हुई।

लगभग डेढ़ बजे एक गाड़ी डॉक्टरके घरके सामने आकर रुकी। उसमेंसे किसान-जैसे दो आदमियोंने डॉक्टरके नंगे

लहूलुहान बेहोश शरीरको नीचे उतारा। डॉक्टरकी पत्नी तो पागल-सी हो गयी। गाँवसे तत्काल दूसरे डॉक्टरको बुलाया गया और धीमु भाईके इलाजकी व्यवस्था हुई। दो-ढाई घंटे बाद उनको होश हुआ। हालत पूछनेपर डॉक्टरने बतलाया—

'पिछली रातको आया हुआ ग्रामीण झूठा था। उसके साथ मैं थोड़ी दूर गया था कि उसने मुझे रोक लिया। फिर चाँटा मारकर मुझे ढकेल दिया। खड़ा होकर मैं उसका सामना करूँ, इसके पहले ही आस-पासकी झाड़ियोंमेंसे उसके तीन-चार साथी और निकल आये और उन्होंने मुझपर हमला कर दिया। मैं एक-दो बार चिल्लाया। इसी बीच मेरे सिरपर बड़े जोरका आघात लगा। मैं अचेत हो गया। फिर क्या हुआ, मुझे पता नहीं।'

डॉक्टरकी पत्नीने उन किसानोंसे पूछा—'डॉक्टरको तुम कहाँसे लाये?'

'हम गाड़ी लेकर गाँवकी तरफ आ रहे थे, तब एक ओर हमने किसीको लहूलुहान अचेत पड़े देखा। नजदीक जाकर देखा तो डॉक्टर साहब थे। हमलोग बहुत बार दवा लेने आया करते हैं, इसलिये डॉक्टर साहबको पहचानते थे।'—यों किसानोंने बताया।

डॉक्टरके गरम कपड़े, कलाईकी घड़ी, जूते, साइकिल और पाकेट—जिसमें चालीस-पैंतालीस रुपये थे—सब वे चोर लूट ले गये थे।

एक सप्ताहके बाद डॉक्टर धीमु भाई पूरी तरह अच्छे हो गये। तब तुरंत ही उन्होंने एक नयी साइकिल खरीदी और फिरसे पूर्ववत् गाँवोंमें जाना-आना और रोगियोंका इलाज करना शुरू कर दिया।

कुछ दिनों बाद एक दुपहरीको कोई एक ग्रामीण दौड़ता हुआ दवाखाने आया और डॉक्टरसे विनय करने लगा—'डॉक्टर साहब! मेरी स्त्री बच्चा होनेके बादसे बेहोश पड़ी है। अभी खून बह रहा है—दया करो।'

तुरंत ही डॉक्टरने दवाखाना बंद करके साइकिल सँभाली। उनको जाते देख किसी एक हितैषीने व्यंग-विनोदसे कहा—'आपके उपकारका बदला ये लोग कैसा चुकाते हैं, इसका अनुभव तो आपको अच्छी तरह हो चुका है। धीमु भाई! इतनेपर भी आपने दौड़-भाग शुरू की? यह न करके मेरे भाई! प्रेक्टिसमें मन लगाइये न, सेवा भी होगी और कुछ बनेगा भी।'

इस व्यावहारिक सूचनाको सुनकर डॉक्टरने रहस्यभरी मुसकान बिखेरते हुए कहा—'भाई! सेवा करना और संकट आनेपर पैर पीछे रखना—दोनों बातें एक साथ कैसे चल सकती हैं? एककी भूलका दण्ड दूसरेपर लादनेका मुझे क्या अधिकार है। किसीको भी बीमारीसे—संकटसे बचानेका प्रयत्न करनेमें ही मेरे जीवनकी सार्थकता है। मेरी केवल चार सौ रुपयेमात्रकी चीजें लुटी हैं, इतनेके लिये ही मैं रोकर बैठ जाऊँ और हाथमें शक्ति रहते भी मनुष्य-जैसे मनुष्यको मौतका ग्रास बनते निष्ठुर हृदयसे देखता रहूँ। क्यों?' धीमु भाईने जवाब दिया।

हितैषी सज्जन इनकी सेवा-भावनाकी उमंग देखकर अवाक् बने इनको जाते देखते रहे। 'अखण्ड आनन्द'

—रमेश पारेख

प्रभु-कृपासे बिना दहेजके आदर्श विवाह

'श्री......की लड़की युवती हो गयी थी। उनको लड़कीके हाथ पीले करनेकी बड़ी चिन्ता थी। कई जगह लड़के देखे। लड़की थोड़ी पढ़ी भी थी। पढ़े-लिखे लड़कोंके अभिभावक लड़कीके साथ दहेज भी माँगते थे। दहेजके नामपर उनके पास फूटी कौड़ी भी न थी। एक वही लड़की थी, जिसे बड़े लाड़-प्यारसे पाला था, पढ़ाया था। आज हिंदू-समाजमें दहेजका बोझ लड़कीवालोंके दिलमें घुटन रखता है। दिन-रात उन्हें मानसिक पीड़ा रहती है। उन्होंने इधर-उधर कोशिश की, पर सफलता नहीं मिली। लड़की भी बड़ी थी। समझदार थी। वह पिताकी परेशानी देखती कि कई जगह जाते हैं, पर उदास ही लौटते हैं। पिता लड़कीको समझाते ताकि धैर्य रखे—कहीं गलत रास्तेकी ओर कदम न उठा दे। लड़की दुःखी हो उठती। वह अपने दुर्भाग्यपर रो पड़ती। कभी-कभी आत्महत्या करनेतकके विचार आते। वह रामायणका पाठ नित्य करती थी, शंकरजीको जल चढ़ाती थी। यह उसका बचपनसे स्वभाव था। अब वह करुण प्रार्थना करती। कई महीने ऐसे बीत गये। ऐसी दशामें दिन-रात उसे घुटन रहती। खाना-पीना अच्छा न लगता। किसीसे दिल खोलकर बातें करना उसने छोड़ दिया। सदा उदास रहती। एक सहारा प्रभुका था जिससे थोड़ी आशा आती—पर काम होनेमें देरी देख मन अधीर हो उठता। पिताने लाख कोशिश की, इधर-उधर सिर मारा। पर कोई ठीक लड़का न मिला। लड़का मिले तो दहेजकी

असमर्थता। दहेज न माँगे तो लड़का और परिवार ठीक नहीं। लड़की अपने जीवनसे तंग आ चुकी थी। तभी पिताको एक-दो आदमियोंने सलाह दी कि अमुक जगह एक सज्जन हैं। उनका लड़का पढ़ा-लिखा है, अच्छे स्वभावका है। वहाँ जाओ, पर वे बोले कि 'उस लड़केके लिये तो एक आदमी……हजार रुपये दहेज कह आये थे। पर तब मामला तय नहीं हुआ था।' पिताका मन फिर उदास हो गया। लड़की समझदार थी। उसने पितासे कहा—'आप वहाँ जाइये तो सही।' इधर सुबह प्रार्थना की, रोकर प्रभुसे कहा कि 'अगर यह काम न हुआ तो फिर अब मुझे उठा लेना इस पृथ्वीसे। बहुत दिन हो गये। पिताजीकी यह परेशानी अब देखी नहीं जाती।'

पिता गये। बातें कीं, लड़केको देखा। लड़केका पिता लड़कीके पिताकी करुण दशा देख पिघल गया। सोचा कि लड़की यदि अच्छी हो तो बिना दहेज शादी करनेमें क्या हर्ज है। धनका क्या होता है। यदि भगवान्‌को धन देना नहीं होगा तो फिर कहीं घाटा लग जायगा और क्षति हो जायगी, यदि लड़की खराब मिल गयी तो जिंदगीभर रोना रहेगा। उन्होंने 'हाँ' कर दी। कहा कि 'लड़की देखकर तय करेंगे।' लड़की देखी, पसंद आ गयी। सगाई पक्की हो गयी। परीक्षा हुई। लड़कीका मनोभार हटा। पिताने चैनकी साँस ली। लड़केका पिता सोचता था—'मैं बिना दहेज यदि विवाह करूँगा तो समाजमें और लोग भी मेरा अनुसरण करेंगे। समाजकी एक बुराई दूर होगी।' अब लड़केके पिताको इसमें गौरव-बोध होने लगा। लड़कीके पिताने किसी तरह बारातके स्वागत, भोजनादिके लिये धन एकत्र कर लिया और आनन्दपूर्वक विवाह हो गया। लड़की

ससुराल गयी। अच्छे माता-पिता एवं खुशहाल घर इसने पाया। पति धार्मिक प्रकृतिका तथा दहेजप्रथाका विरोधी था। लड़कीके मनसे ऐसा पति पाकर हीन भावना हट गयी। दहेज दिये बिना हृदयसे चाहनेवाला ऐसा पति उसे मिला। उस लड़कीके हृदयोद्गार ये हैं, जो हरेकको प्रेरणा देंगे—

१-यदि ईश्वरपर आस्था तथा विश्वास रखा जाय तो हर तरहका काम पूरा होता है। सब सुख मिलते हैं। ईश्वर अपने सहारे पड़े लोगोंका कार्य या तो स्वयं अपने हाथों कर देते हैं या प्रेरणा देकर किसी दूसरेसे करवा देते हैं। कभी निराश नहीं होना चाहिये। भगवान्‌को अपना प्रिय और सबल संरक्षक मानकर प्रसन्न रहना चाहिये। विश्वासपूर्वक प्रतिदिन प्रार्थना करनी चाहिये। भरोसा रखना चाहिये कि जब उन्हें अपनी बात बता दी तो अब अपने दिलकी बात प्रभुसे कहकर निश्चिन्त हो जाना चाहिये। मौकेपर काम अवश्य हो जायगा, वे खुद सँभाल करेंगे।

२-ईश्वर सुनते हैं, सबकी सुनते हैं। सब कुछ देते हैं, कोई शिकायत नहीं रहती। सद्बुद्धिसे बढ़कर मूल्यवान् वस्तु क्या है, वही सबसे पहले देते हैं। भगवान् ही परम निर्भरयोग्य हैं तथा हर तरह समर्थ हैं। भगवान्‌को अपना माननेमें हर तरह कल्याण है। भगवान्‌को कोई पराया क्यों मानता है? वे तो अपनेसे भी अपने हैं। परायेपनका भान क्यों होता है?

३-बिना कुछ भी दहेज लिये जो अपने लड़कोंका विवाह करते हैं, वे अपना और समाजका कल्याण करते हैं। उनका यह कार्य—प्रयास सराहनीय है। मानवता भी यही है कि लड़की अच्छी सुसंस्कृत परिवारकी हो ताकि लड़केको अच्छी

धर्मसंगिनी मिले। लड़की भी ऐसे धार्मिक तथा उच्च विचारोंके परिवारमें आकर अपनेको धन्य मानती है। नवयुवती लड़कियोंको धैर्यपूर्वक धर्मका पालन करना चाहिये। अधीर न होना चाहिये कि इतनी बड़ी उम्र हो गयी। अपने मनमें भार न रखना चाहिये। न स्वतन्त्र होकर उच्छृंखलता अपनानी चाहिये। स्त्री-स्वातन्त्र्य स्त्रीके गुणोंको नष्ट करता है। शास्त्रोचित धर्म ही श्रेष्ठ है। विश्वासपूर्वक भगवान्से प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये।

साधारण गृहस्थ, पर महान् संतहृदय

उस दिन मैं अपनी साइकिल ठीक करवानेको जयपुरके एक दूकानदारके यहाँ ले गया, देखा तो एक पुलिस-अधिकारी उक्त दूकानदारको बुरी तरह धमका रहा था और दूकानदार चुपचाप सुन रहा था। अन्तमें उस अधिकारीने केस बनाकर उसे गिरफ्तार करना चाहा। दूकानदार अब भी चुप! पूछनेपर उसने यही कहा कि 'जो भी उचित हो करें, मैं तैयार हूँ।' वास्तवमें बात क्या थी यह मुझे पीछे मालूम हुआ। साइकिलके टायर-ट्यूबोंपर कोई कंट्रोल सरकारकी ओरसे नहीं है, न मूल्य-नियन्त्रण ही है, केवल कम्पनीकी ओरसे दर निश्चित है और परचीद्वारा टायर-ट्यूबकी बिक्री होती है। पुलिस-अधिकारी बहुत अधिक टायर बिना परचीके चाहते हैं, पर जबसे परचीका चलन हो गया है, दूकानदार अधिक टायर उन्हें दे नहीं सकते। इससे रुष्ट होकर ही यह कार्यवाही की जा रही थी। इस सारे समयमें दूकानदारके मुखपर व्याप्त अखण्ड शान्ति दर्शनीय थी। मैंने कभी इतनी प्रभावकारिणी शान्ति नहीं देखी थी। केस तो कुछ बनता नहीं था, फिर भी महाजनको गिरफ्तार कर लिया गया। दूसरे दिन न्यायालयसे जमानतपर उसकी मुक्ति हो गयी और कुछ समय बाद पुलिसने रिपोर्ट दे दी कि कोई वाकया हुआ ही नहीं; अतः चार्जशीट नहीं देनी है।

सांसारिक दृष्टिसे कितना भारी अन्याय हुआ उक्त सज्जनपर किंतु मैं इस मामलेमें कुछ आकृष्ट हो जानेके कारण जानकारी रखता रहा और एक दिन मैं उक्त सज्जनसे कह ही बैठा—'क्या आप इस अन्यायके विरुद्ध कोई केस न्यायालयमें मानहानिका या

आर्थिक हानिका नहीं कर रहे हैं?' जवाब जो कुछ मिला, उससे मैं अत्यन्त ही प्रभावित हुआ—'भैयाजी! रामजीने जो रच रखा था, वही हुआ। अनेकों रूपोंमें रामजी विराजमान हैं। उनकी इच्छा है—पालन करें या मारें। भगवान् दयालु हैं, कर्मोंको भुगताकर मायासे छुड़ा देते हैं। वे किसी भी वेशमें पधारें, उनको शत-शत प्रणाम है। भगवान्‌के किसी भी रूपके विरुद्ध सांसारिक न्यायालयमें कार्यवाही करनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उनकी अघटन-घटनापटीयसी लीलाको धन्यवाद है। कोटि-कोटि शरणागतोंकी लज्जा वे ही रखनेवाले हैं। भगवान् उक्त अधिकारीको सद्बुद्धि प्रदान करें और यदि कोई दण्ड इस सम्बन्धमें कर्मानुसार मिलना हो तो उसे क्षमा करें। मैं गृहस्थ सांसारिक अकिंचन हूँ। वे मेरे माता-पिता, बन्धु-सखा, विद्या-बुद्धिगुरु तथा उत्प्रेरक हैं। निश्चय ही अन्याय करना और अन्याय सहना दोनों पाप हैं; किंतु शरणागतवत्सलकी ऐसी ही प्रेरणा है। विरोध किससे किया जाय? किससे बदला लिया जाय? क्या अपने-आपसे? क्या सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ, सर्वान्तर्यामीसे? भैयाजी! आनन्दमयके प्रत्येक कार्यमें आनन्द ही क्यों न लिया जाय? वे अधिकारी तो इस शरीरका भला करने आये थे। आदमीपर बुरा प्रभाव पड़ेगा तो यह जीव (आश्रित) भगवान्‌के योगक्षेमसे वंचित थोड़े ही रह जायगा?

उत्तर सुनकर मैं चकित रह गया। क्या आज भी संसारमें ऐसे संत गृहस्थ मौजूद हैं जो इतना अन्याय सहकर भी किसी प्रकारकी प्रतिशोधात्मक कार्यवाही करना उचित नहीं मानते, बल्कि सबको भगवान् मानते और उनके विधानपर विश्वास करते हैं। इस कारण मैं जब कभी उधरसे निकलता हूँ, तो मन-ही-मन उनको प्रणाम कर लेता हूँ। —मदनलाल

जेवरकी पेटी, जो इन्हीं महाजनके लड़कोंके पास रखी थी तथा उसके नकद पाँच हजार जो यहाँ जमा थे, इन्होंने उदारतापूर्वक सब उसके यहाँ पहुँचा दिये, महाजनका ऐसा आदर्श त्याग और अपकारीके प्रति भी अनोखी दया और भलाईका बर्ताव देख सब लोग दंग रह गये और महाजनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। इस युगमें अपकारीके साथ भी दया-भलाईका बर्ताव करनेवाले ऐसे आदर्श महाजन जल्दी नहीं मिलेंगे।

—वल्लभदास बिन्नानी 'व्रजेश' साहित्यरत्न

ईमानदार ताँगेवाला

गत वर्ष ग्रीष्मावकाशमें अपनी सहधर्मिणीको लेनेके लिये मैं दिल्ली गया था। प्रात:काल छ: बजेकी मोटरसे मुरैना (ग्वालियर) जाना निश्चित हुआ। मेरे साले साहबने एक ताँगा मँगवा दिया और स्वयं साइकिलपर टिकट लेनेको पहले ही चले गये। सामान और सवारियोंसे लदकर ताँगा बस-स्टैंडपर पहुँचा। मैं अपनी श्रीमतीजीको सामान उतरवानेकी हिदायत देकर टिकट-खिड़कीकी ओर साले साहबके पास चला गया। टिकट लाकर जब मैं बसमें सामान चढ़ाने लगा तो देखा कि दो सूटकेस नहीं थे। उन सूटकेसोंमें हमारा सभी कुछ था— मेरे सभी अच्छे कपड़े, नकद रुपये, श्रीमतीजीकी कीमती साड़ियाँ और जेवर आदि। सूटकेसोंको न देखकर तो मेरी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया। सभीके चेहरे फक्क हो गये।

आजकल यहाँ आये दिन लूट-खसोट, छीना-झपटी और दिन-दहाड़े आँखोंमें धूल झोंककर लूटनेकी घटनाएँ होती रहती हैं, जहाँ कुली, ताँगेवाले, टैक्सीवाले लोगोंको चकमा देनेकी ताकमें रहते हैं, वहाँ इस प्रकारसे अनायास अप्रत्याशित सूटकेस मिली देखकर कौन उसे लौटा देनेकी मूर्खता करेगा? दिल्ली भारतकी राजधानी, जहाँ आये दिन इस प्रकारकी घटनाएँ होती रहती हैं। वहाँकी धक्कमपेल और भीड़-भड़क्केमें उस ताँगेवालेका पता लगाना, जिसका न हुलिया याद, न नम्बर-प्लेट मालूम, नितान्त ही असम्भव-सा कार्य है। पुलिसमें रिपोर्ट लिखवाकर और आफत मोल लेना था। इधर मोटरका समय

भी होता जा रहा था। कुछ भी समझमें नहीं आ रहा था कि क्या करें। आखिर घर जाकर क्या जवाब देंगे? अपनी जल्दबाजी और मूर्खताका इजहार किस मुखसे करेंगे और आजकलके इस अर्थसंकटमें कैसे इतनी बड़ी क्षतिकी पूर्ति कर पायेंगे? सभी ओर अँधेरा-ही-अँधेरा दिखायी दे रहा था। साले साहब साइकिलपर इधर-उधर खोज कर रहे थे; किंतु उनका यह प्रयास अँधेरेमें टटोलनेके समान ही था। जिस किसीसे भी कहते वही हँसता और कहता कि 'इतनी बड़ी दिल्लीमें कहीं भला उसका पता भी लग सकता है? अरे भाई! वह तो कभीका घर पहुँचकर खोल-खालके आनन्द मना रहा होगा।' ऐसे उत्तर सुनकर हम और भी निराश हो गये और सबको रुलाई-सी आने लगी।

जब मनुष्य निरुपाय हो जाता है, जब उसकी शक्ति अपनी सीमापर स्थित हो जाती है तभी वह भगवान्‌की ओर दौड़ता है। मेरी श्रीमतीजी, उनकी बहिनें और मैं—सभी आर्त होकर मन-ही-मन भगवान्‌को पुकारने लगे। उनकी कृपाको प्राप्त करनेके लिये प्रार्थना करने लगे। कुछ ही क्षण बीते होंगे, वह ताँगेवाला आकर कह रहा है—'बाबूजी! अपने ये दोनों सूटकेस तो ले लो। ये सीटके नीचे अंदर ही रखे रह गये। यह तो मैं जब दूसरी सवारीका सामान रख रहा था, तब इनपर निगाह पड़ी। उसी समय सवारी छोड़ यहाँ भागा चला आया। मुझे डर था कि कहीं आप चले न गये हों, अन्यथा फिर आपका घर ढूँढ़ना पड़ता। सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये।

मन-ही-मन मैंने जहाँ एक ओर उस दयालु ईश्वरको नमन किया, वहीं ईश्वरके साक्षात् प्रतिरूप उस ताँगेवालेके प्रति भी

मेरा मन कृतज्ञतासे भर गया। मैंने उसे देवस्वरूप समझा और पुरस्कार-स्वरूप उसे कुछ देना चाहा। किंतु उस आदर्श मानवने तो कुछ भी लेनेसे इनकार कर दिया। विश्वास नहीं हो रहा था कि इस धोखाधड़ी, छल-फरेब और बेईमान दुनियामें भी एक गरीब ताँगेवाला इतना ईमानदार होगा। मेरी समझसे वह ताँगेवाला साधारण व्यक्ति नहीं था, जिसने इतने बड़े प्रलोभनपर विजय प्राप्त कर उसे यों ही ठुकरा दिया।

—प्रो० यदुवीरप्रसाद भटनागर

‘योगक्षेमं वहाम्यहम्’की एक झलक

कुछ वर्ष पुरानी बात है कि पूज्य भाई महात्मा श्रीसाधकजी (भू० पू० श्रीमिट्ठूलाल चौधरी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०) मेरे स्थान दिल्लीमें पधारे और मुझे अपने साथ काश्मीरकी यात्रापर ले चलनेका उन्होंने आग्रह किया। मैं इस बातपर राजी हो गया कि वे ही दोनोंका सब खर्च बर्दाश्त करेंगे और जब कभी मेरे पास रुपये बचेंगे, तब मैं उनको अपनी सुविधाके अनुसार आधा खर्च वापस कर दूँगा। जब दिल्ली स्टेशनपर पहुँचे तो दो टिकट लुधियानेके खरीदे। डिब्बेमें बैठते-बैठते ही मेरी जेब कट गयी। पर उसमें केवल एक छोटी डायरीका बटुआ ही था, जिसमें न जाने कबसे दो-चार आने पड़े हुए थे। श्रीसाधकजीने कहा कि ‘अच्छा हुआ, क्योंकि जब तुमने कहा था कि एक पैसा भी नहीं लेकर चलूँगा तो फिर इतने पैसे ही जेबमें डालनेकी क्यों बेईमानी की?’ लुधियानेमें सात दिन श्रीस्वामी रामकी ‘रामकुटी’पर ठहरे। वहाँ मेरे तीन प्रवचन सत्संगमें ‘योगक्षेम’ पर हुए। पर संयोगवश ऐसा हुआ कि कानपुरसे भाई नवलकिशोर भरतियाजीकी बीमारीकी खबर मिली और श्रीसाधकजीको कानपुर बुलाया गया। गरमीके दिन थे; श्रीसाधकजीने कहा कि ‘शाण्डिल्यजी! तुम अब देहरादून-मंसूरी चले जाओ, जहाँ तुम्हारा पुत्र एन० डी० ए० में प्रोफेसर है और कल मैं भी कानपुर चला जाऊँगा।’ श्रीसाधकजी मुझे लुधियाना स्टेशनपर पहुँचाने मेरे साथ चले। रास्तेमें कहने लगे कि ‘बच्चू! मैंने तो काश्मीर-यात्राका खर्च बर्दाश्त करनेको कहा था, न कि मंसूरी जानेका—अब लल्लूजी!

बिना पैसेके कैसे जाओगे।' मैंने कहा कि ''भाई साहब! क्या '**योगक्षेमं वहाम्यहम्**' वाली बात भूल गये जो ऐसा कहते हो।'' स्टेशनपर उन्होंने मेरी जेबमें पाँच रुपये डाल दिये और देहरादूनको तार दे दिया कि स्टेशनपर मुझे मोटर लेने आ जाय। सेकंड क्लासका देहरादूनतकका टिकट भी खरीदकर मुझे दे दिया। पर गाड़ी आनेमें कुछ देर थी, इतनेमें प्लेटफार्मपर मेरा एक विद्यार्थी मिला और कहने लगा कि 'गुरुजी! यहाँ कैसे और कहाँ जा रहे हो।' सब बातें बतायीं तो वह कहने लगा कि 'मैं रेलवेका अफसर हूँ और आज इसी गाड़ीमें मेरा केबिन फर्स्ट क्लासका जुड़ेगा, आप मेरे साथ उसीमें चलिये। चाय-पानी, खाने-पीनेका और ओढ़ने-बिछानेका सब इंतजाम है। मैंने कहा कि 'सेकंड क्लासकी टिकट खरीद ली है।' उसने कहा कि 'इसे लौटा दो।' पर श्रीसाधकजीने कहा कि 'अब टिकट लौटाना ठीक नहीं है—है तो यह भी बेजा कि तुम उस केबिनमें फर्स्ट क्लासमें यात्रा करो, पर तुम्हारे विद्यार्थीका आग्रह है इसलिये आरामसे उन्हींके डिब्बेमें मजेसे सोते हुए चले जाओ। मैंने कहा कि 'देखी योगक्षेमकी झलक।' हँसने लगे। दूसरे दिन प्रातः देहरादून स्टेशनपर पहुँचे तो मुझे लेने मोटर नहीं आयी। वहाँसे छः-सात मील क्लीमेंट टाउनमें जाना था। प्लेटफार्मपर एक वहाँके कप्तान साहब मिल गये। मैंने उनसे कहा कि ''भाई! एक आपके यहाँ 'शाण्डिल्य' रहते हैं, उन्हें जानते हो।'' कहने लगे कि 'वे मेरे बँगलेके पास ही रहते हैं और मेरे मित्र हैं।' मैंने कहा कि 'प्रभुने मुझे उनका पिता बनाया है।' वे हँसे और मुझे अपनी मोटरमें ले गये और मेरे पुत्रके बँगलेपर उतारकर चले गये। मेरे पहुँचनेके दस मिनट बाद लड़केको मेरा लुधियानेसे

भेजा हुआ तार मिला। वहाँसे मैंने श्रीसाधकजीको पत्र लिखा कि 'आपके पाँचों रुपये और टिकट जेबमें ज्यों-के-त्यों पड़े हैं। आपका तार पहुँचा नहीं था, पर एक कप्तान साहब अपनी मोटरमें यहाँ पहुँचा गये—रातमें बड़ा अच्छा भोजन मिला। प्रातः रेलमें चाय-मिठाई इत्यादि सबका प्रबन्ध विद्यार्थीने कर दिया था।' श्रीसाधकजीका उत्तर आया कि 'भैया! मैं तो साधक ही हूँ—तू तो सिद्ध है।' मैंने उनको फिर लिखा कि 'भाई साहब! सिद्ध संतोंकी चरण-रजके बराबर भी मैं नहीं हूँ। पर प्रसन्नता इस बातको जानकर अवश्य होती है कि परमात्माने अपने अनुग्रहसे आपको और मुझको यह विश्वास दिला दिया कि वास्तवमें श्रीकृष्णभगवान् अपने मुझ-जैसे क्षुद्र-से-क्षुद्र भक्तोंका भी योगक्षेम निभानेका भार अपने ऊपर लिये रहते हैं। तभी तो कहा है कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

—एम० एल० शाण्डिल्य, प्रोफेसर

कोमल कवि-हृदय

एक समय मित्रोंको साथ लेकर स्व० गुजराती कवि कलापी माथेरान गये थे। मित्रोंमें मस्त कवि त्रिभोवन तथा हरगोविन्द भी थे। एक दिन दुपहरके बाद कलापी मित्रोंके साथ बैठे थे। इसी बीच एक पक्षियोंको बेचनेवाला बुलबुल तथा मैनाओंके पिंजरे लिये बेचने आया। बुलबुलोंको देखते ही कलापीको आनन्दावेश हो आया। ऐसी बुलबुलें उनके गाँव लाठीमें नहीं हैं, इसको लेकर वे खेद करने लगे। लाठी ग्राम बुलबुलोंकी चहचहाहटसे भर जाय तो कितना आनन्द हो। उन्होंने ऐसी कल्पना करके कुछ बुलबुलें खरीद लीं और उनके पिंजरेको टाँगकर एक दृष्टिसे बुलबुलोंकी ओर देखने लगे। कलापीजीके इस बर्तावसे हरगोविन्द नाराज होते जा रहे थे। उन्होंने पीछेसे उग्र स्वरमें कहा—'ठाकुर! आपकी लाठीमें बुलबुलें अपने-आप आयें, ऐसा बगीचा लगाइये। फिर तो बुलबुलें अपने-आप आयेंगी। आपको इस प्रकारका वातावरण या बाग तो बनाना नहीं है और बुलबुलें जरूर चाहिये। इसीसे बेचारे गरीब पक्षियोंको पकड़कर पिंजरोंमें बंद करके दीवालोंमें कैद रखते हैं। बेचारे वनके जीवोंको वनोंमें नहीं जीने देते।' पास बैठे हुए मित्रोंमेंसे श्रीजीवनराम दवे हरगोविन्दको रोकना चाहा। तब हरगोविन्दने कहा—'मैं आपसे कुछ नहीं कहता, आप क्यों बीचमें पड़ते हैं?' कलापीने कहा—'कहिये कविजी! मुझे क्या करना चाहिये?' हरगोविन्दने कहा—'आपको राजा बनकर यह आदेश जारी

करना चाहिये कि इस प्रकारके पक्षियोंको पकड़कर जो पिंजरोंमें बंद करेगा, उसको कड़ा दण्ड दिया जायगा। ऐसा न करके आप तो खरीदने बैठ गये। अतः ये लोग कल और पक्षियोंको पकड़ लायेंगे और फिर आप इन्हें मुँहमाँगे दाम देकर खरीद लेंगे।'

उत्तरमें हँसकर कलापीजीने कहा—'हाँ, मैं सभी खरीद लूँगा'—इस वाक्यको सुनते ही हरगोविन्द खूब नाराज होकर बोले—'आप-जैसे लोग ही इन गरीब पखेरुओंके दुःखके कारण हैं। अपने कानको आनन्द देनेके लिये खुले आकाशके पक्षीको पिंजरेकी कैदमें डालकर बेचारेको बेमौत मार डालते हैं।' इतना कहकर कवि हरगोविन्द बैठक छोड़कर चले गये।

बुलबुलोंके सभी पिंजरे कलापीने तुरंत खरीद लिये और उनको बँगलेके पोर्चमें टँगवा दिया। शामको कलापी मित्रोंके साथ घूमने निकले, तब हरगोविन्द साथ नहीं गये। उन्होंने मुँहतक नहीं दिखाया। भोजन भी उन्होंने साथ न करके अकेले ही किया। दूसरे दिन बड़े सबेरे कवि हरगोविन्द अपने नित्यके कार्यक्रमके अनुसार हाथमें छड़ी लेकर घूमनेके लिये सीढ़ी उतरकर नीचे पोर्चसे निकल रहे थे कि वहाँ प्रातःकालके धुँधले उजियालेमें सामने टँगे हुए पिंजरोंके बगलमें छायाचित्रकी तरह खड़े कवि कलापी दिखायी दिये। कलापी स्थिर खड़े थे। हरगोविन्दने नजदीक जाकर देखा तो सभी पिंजरे खुले थे। और उनमेंसे उड़-उड़कर जाते हुए बुलबुलों और मैनाओंकी ओर कवि कलापी रसभरी दृष्टिसे देख रहे थे और छोड़े हुए पक्षियोंसे मानो कह रहे थे कि 'अरे पक्षियो! सुखसे चुगो और गीत गाओ।'

यह देखकर हरगोविन्दने कहा—'ठाकुर! आपको यही करना था तो मुझे कहना चाहिये था न?' कलापीने कहा—'आपकी बात सत्य है। बन्धनसे छूटकर उड़-उड़कर जाते हुए पक्षी कैसे सुन्दर लगते हैं?'

इतना कहकर पक्षियोंको उड़ाकर वे दोनों कवि मित्र प्रातःकाल अकेले आगे बढ़ते हुए उजियालेमें दूरतक घूमने निकल गये। 'अखण्ड आनन्द'

—शिवलाल फोटोग्राफर

मोतियाबिंदनाशक सुरमा

प्रेमी पाठकोंसे विशेष निवेदन केवल यह है कि हमें इस सुरमेका नुस्खा एक योगिराज महात्माने बताया था और इसके द्वारा धनोपार्जन न करनेका हमसे वचन लिया था; अतः पाठक भी कृपया हमारे इस वचनकी रक्षा करते हुए इसके द्वारा धनोपार्जनका प्रयास न करें।

सुरमा बनानेकी विधि—

इस सुरमेमें केवल दो चीजोंका प्रयोग होता है—(१)नीमके फूल, (२) कलमी शोरा।

१-नीमके फूल जब वृक्षपर पक जायँ तो उन्हें वृक्षसे तोड़ लें। (भूमिपर गिरे हुए न उठावें; क्योंकि उनके साथ रेत या मिट्टीका अंश भी आयेगा जो रोगके लिये हानिकारक है।) फूलोंकी हरी डंठल फूलसे अलग करके निकाल दें। (यदि डंठल नहीं निकाली जायगी तो सुरमा बारीक नहीं पिस पायेगा और तब आँखमें लगाते समय कष्ट देगा।) फूलोंको छायामें ही सुखा लें। गर्द, मिट्टी आदिसे बराबर बचाते रहें। छायामें ही सूख जानेपर काली खरलमें इन्हें खूब बारीक-बारीक पीस लें। तत्पश्चात् समान मात्रामें कलमी शोरा मिलाकर पुनः पीसें। कपड़ेसे छानकर शीशीमें रख लें। बस, सुरमा तैयार हो गया।

सेवन-विधि—

केवल रात्रिको सोते समय सलाईसे लगावें।

२-त्रिफला (हर्रे—१ भाग, बहेड़ा—२ भाग, आँवला—४ भाग) कूटकर रात्रिको साफ बर्तनमें (मिट्टीका पात्र हो तो

अपकारीके प्रति भी अनोखी दया और भलाई

अभी हालकी घटना है। मुश्किलसे कुछ साल हुए होंगे। यहाँके जूट हैसियन बाजारके बाड़ेमें एक महाजनका पाटिया है। वयोवृद्ध महाजन बड़े भगवद्भक्त, परोपकारी, धर्मनिष्ठ महानुभाव हैं। जो अब अधिकतर व्रजमण्डल आदिमें ही निवास करते हैं। यहाँका कारोबार उनके सुयोग्य लड़के सँभालते हैं। इस पाटियाका सारा काम एक मुनीम सँभालता था जो कि महाजनके चाचाके सालेका लड़का था। एक बार उसकी नीयत बिगड़ी और वह अवसर पाकर करीब पौने दो लाख रुपयेका कबाड़ा एवं गोलमाल करके दिल्ली निकल गया।

सब लोग एवं महाजनके चाचा आदि भी उसे पकड़ना चाहते थे, क्योंकि प्रतिष्ठित फर्म थी। मुनीमके विरुद्ध सारे सबूत भी मिल गये थे और काम भी उसका अत्यन्त निन्दनीय था ही। पर धन्य है उस महाजन सेठके विलक्षण विवेक, दूरदर्शिता और उदारताको। जब आखिरमें यह खबर उनके पास पहुँची और उनके चाचाने उसे पकड़ानेपर जोर दिया तो वे महाजन बोले—'रुपये तो अब किसी हालतमें आनेके हैं नहीं; क्योंकि वे तो गल-पच गये। अब तो वह कबाड़िया हो ही गया तो फिर क्यों उसके साथ ऐसी कार्रवाई करके रहा-सहा आपसी व्यवहार-बर्ताव भी बिगाड़ा जाय? धन तो गया ही, उसके साथ-साथ व्यवहार भी खतम हो जायगा।' इतना ही नहीं, उसकी एक

अच्छा है) शुद्ध जलके साथ भिगो दें। प्रातःकाल छानकर उससे आँखें धोवें तथा तीन घूँट पी लें।

३-सूर्योदयसे पूर्व नंगे पाँव हरी घासपर कम-से-कम आध घंटा भ्रमण अवश्य करें।

४-चिकित्सा प्रारम्भ करनेसे पूर्व प्रथम तीन दिन शौच हो आनेके पश्चात् शुद्ध जलसे बस्तीकर्म (एनिमा) करें और फिर जब कभी पेट गड़बड़ हो तो बस्तीकर्म करें। एनिमाकी विधि ज्ञात न हो तो किसी स्थानीय चिकित्सकसे पूछें या हमारी 'आरोग्यशास्त्र' पुस्तकमें देखें, जिससे स्वास्थ्यके सभी नियमोंका भी ज्ञान होगा।

५-प्रातःकालके जलपानमें गायका मक्खन और मधु (शहद) अथवा गौका धारोष्ण दूध पीवें।

६-भोजन सात्त्विक और सुपाच्य करें। वादी, बहुत गरम और देरसे पचनेवाली वस्तुएँ न खायँ। दूध, घी, मट्ठा, मक्खन— सभी चीजें गाय अथवा बकरीकी खायँ, भैंस, भेड़ आदिकी नहीं। मांस, मदिरा, तम्बाकू, वनस्पति आयल, चाय, भाँग, गाँजा, प्याज, लहसुन, तेल, खटाई, आइसक्रीम, बरफ, मिर्च खाना मना है। काली मिर्च खा सकते हैं।

—श्रीरवीन्द्र अग्निहोत्री, एम्० ए०, बी० टी० १६, केलाबाग, बरेली

सुखपूर्वक प्रसवका नुस्खा

स्त्रियोंको प्रथम प्रसवमें प्राय: बड़ा कष्ट हुआ करता है और बहुधा अस्पतालोंकी शरण लेनी पड़ती है। यहाँ एक नुस्खा लिखा जाता है। इसके सेवनसे बड़ा लाभ होता है। एक किलो मेथीके बीज चक्कीमें पीसकर उनका चून कर लिया जाय। फिर उसे बिना सिंके हुए चूनमें शुद्ध घी और गुड़ मिलाकर आध पावके लड्डू वना लिये जायँ और ऐसा एक लड्डू ८वें महीनेवाली गर्भवती प्रतिदिन प्रात:काल खाना शुरू कर दे तो ९ महीने होनेपर सुखपूर्वक बालकका जन्म होता है। प्रसूतिको कोई भी कष्ट नहीं होता।

—हीरालाल परतानी

आदर्श सद्व्यवहार

उस समय प्रान्तीयताका इतना पतनकारी प्रचार नहीं था। सन् १९३३के अगस्त मासकी बात है। 'सोफ्ट केक सेस कमेटी' के कार्यालयका नियुक्तिपत्र लिये मैं बम्बईके 'बोरीबन्दर' स्टेशनपर उतरा। उस समय केवल तीन रुपये मेरे पास थे। इतने विशाल शहरका आश्रय लेनेके लिये कहाँ जाऊँ? मैं इसी उधेड़-बुनमें पड़ गया। 'खान-पान मिल जाय, पर स्थान न मिले'—ऐसी परिस्थिति थी। बम्बई ऑफिसके उच्च अधिकारीके नाम मैं सिफारिशी पत्र साथ लाया था। अतएव सबसे पहले उन्हींसे मिलनेका मैंने निर्णय किया। खोजते-खोजते मैं उनके निवास-स्थानपर जा पहुँचा। मुझे देखते ही उन्होंने स्वस्थ मनसे मेरा स्वागत किया। खा-पीकर ऑफिस जाते समय रास्तेमें ही उन्होंने मुझसे पूछा—'भाई! आपने रहनेकी जगहका क्या प्रबन्ध किया है?' मैंने कहा—'साहेब! मैं इस शहरसे सर्वथा अपरिचित हूँ। पैसे भी ज्यादा साथ नहीं लाया, आप जैसे रास्ता बतायेंगे, वैसे ही करूँगा।' उन्होंने तुरंत ही जेबमेंसे बीस रुपयेका नोट निकालकर मेरे हाथपर रखते हुए कहा—'आपने देखा मेरे यहाँ जगहका बड़ा ही अभाव है, बड़ी कठिनतासे हमारा काम चलता है। ये रुपये रखिये, अधिक चाहिये तो माँग लीजियेगा। परंतु रहनेकी व्यवस्था कहीं अन्यत्र कर लीजियेगा। मैं इस विषयमें लाचार हूँ।' मैं तो इन्हींके यहाँ ठहरनेकी आशा लेकर बैठा था, सुनते ही मेरे होश गुम हो गये।

ऑफिसमें पहुँचकर रजिस्टरमें हस्ताक्षर करके मैं स्थानकी

खोजमें निकल पड़ा। जहाँ गया, सभीने उत्साहपूर्वक चाय-पानीसे मेरा स्वागत किया। परंतु स्थानकी व्यवस्थाकी बातपर सभीने किसी-न-किसी बहाने अपनी असमर्थता प्रकट की।

निराश-मुँह शामको मैं ऑफिस लौटा। बड़े अधिकारी तो नहीं थे, परंतु जिला वीरभूम, बंगालके इसी ऑफिसमें काम करनेवाले श्रीचटर्जी महाशय वहाँ बैठे थे।

इन्होंने पहला ही प्रश्न—'रहनेकी कहाँ व्यवस्था की?' किया, तब सारी परिस्थितिका परिचय देकर मैंने कहा कि 'अभीतक तो कहीं भी व्यवस्था नहीं हो सकी है और व्यवस्था न हुई तो मैंने वापस लौट जानेका विचार किया है।' मैंने उनसे यह भी कह दिया। यह सुनकर वे कुछ भी बोले तो नहीं, किंतु चिन्तित चेहरा लिये उठकर बाहर चले गये।

दूसरे दिन सबेरे बड़े अधिकारीके घर, जहाँ मैं रहता था, वे आये और 'स्थानकी व्यवस्था हो गयी है'—यह बताकर उन्होंने मुझे सामान लेकर साथ चलनेको कहा। परेल जंक्शनपर बंगाली भाइयोंका सहकारी निवासस्थान (मेस) था। वे मुझे वहाँ ले गये और रहनेकी सारी व्यवस्था उन्होंने कर दी।

बंगाली मित्रोंने अन्यभाषी व्यक्तियोंको अपने मेसमें न रखनेका नियम होते हुए भी रात्रिको विशेष सभाका अधिवेशन करके एक गुजराती भाईको स्थान देनेका प्रस्ताव पास करके जो सहृदयता दिखलायी, इसके लिये मैंने उन सभीका बड़ा ही आभार माना।

लगातार छः महीनेतक मैं वहाँ रहा। फिर घरके लोगोंके आ जानेपर मैंने एक कोठरी किरायेपर लेकर उसमें जाते समय मेसके मन्त्री महोदयसे खर्चका हिसाब माँगा। वे बोल उठे—

'भाई! आप तो हमारे अतिथिके रूपमें यहाँ रहे हैं। आपके पाससे खर्चके पैसे लेना बनता ही नहीं।' ऐसी थी उनकी उन्नत भावना।

उस समय भाषाकी दृष्टिसे राज्य-रचना नहीं हुई थी। अब भाषावार राज्य-रचना होनेके बाद, यह खेदके साथ स्वीकार करना पड़ता है कि एक ही देशके हम विभिन्न भाषी एक-दूसरेके समीप आनेके बदले—दूर-दूर होते चले जा रहे हैं। 'अखण्ड आनन्द'

—शान्तिलाल बोले

आदर्श पतिव्रता पत्नी

आजके इस भौतिक भोगप्रधान युगमें—जहाँ दिनोदिन पवित्र त्यागमयी भारतीय संस्कृतिका ह्रास हो रहा है, मानवताका पतन हो रहा है, आसुरी भोगवाद, फैशनपरस्ती तथा नास्तिकताकी बड़े वेगसे वृद्धि हो रही है, भाई-भाई, पिता-पुत्र तथा पति-पत्नीके बीच कलहाग्नि जल उठी है, सेवाके स्थानपर नीच सीमित स्वार्थ-साधन ही जीवनका लक्ष्य बना जा रहा है; नारीके आदर्श सतीत्वका मजाक उड़ाया जा रहा है; और भारतीय संस्कृति-विरोधी तलाक-प्रथा भी पनप रही है, वहाँ आज भी कई ऐसी भारतीय संस्कृतिका गौरव बढ़ानेवाली घटनाएँ देखनेमें आती हैं, जिनसे भारतीय संस्कृतिका गौरव बढ़ता है और मानवता तथा नैतिकताको प्रोत्साहन मिलता है। ऐसी ही एक घटना नीचे लिखी जा रही है।

कुछ वर्षों पूर्वकी घटना है—

हमारे पड़ोसमें एक सम्पन्न कुलीन परिवार रहता था। परिवारमें एक एम्० ए० पास शिक्षित युवक भी था। तीन सौ रुपये प्रतिमाह कमाता था। वह अविवाहित था। अन्तमें उसका सम्बन्ध एक कुलीन तथा सम्पन्न परिवारकी कन्यासे तय हुआ। कन्या विशेष रूपवती नहीं थी, पर सद्गुणवती तथा विदुषी थी। तदनन्तर उनका विवाह हो गया। युवक अपनी पत्नीको कम ही पसंद करता था। उसकी इच्छा थी कि कोई अत्यन्त सुन्दरी तरुणी उसकी अर्द्धांगिनी बनती। युवकको दुर्भाग्यवश कुछ मनचले रँगीले मित्रोंका कुसंग मिल गया। वह अपनी सुशीला

विवाहिता पत्नीको छोड़कर अपने कार्यालयमें ही काम करनेवाली एक युवतीपर आसक्त हो गया। विवाहिता पत्नी भी दुःखी थी, पर बेचारी विवश थी। वह करती भी तो क्या?

अन्तमें वह ससुराल छोड़कर पीहर चली गयी। युवकका अधिकतर समय युवतीके पास ही कटने लगा। धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा। भाग्यकी विडम्बना देखिये—युवक कुष्ठ-रोगसे ग्रस्त हो गया।

नयी तरुणी, वह तो एक तरहसे रखेल थी। विलास-सुखके लिये साथ हुई थी। वह अब युवककी सेवा करना तो दूर उसे छोड़कर ही चली गयी। युवकका सुन्दर सुगठित शरीर निर्बल होने लगा। चेहरा कुरूप हो गया। शरीरसे आभा झरनेके स्थानपर मवाद चूने लगा। शारीरिक शक्ति दिनोदिन क्षीण होने लगी। घरवाले तो उससे वैसे ही नाराज थे, उन्होंने भी उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

उसकी विवाहिता पत्नी आदर्श नारी थी। उसने पतिको तलाक नहीं दिया था। पीहरमें वह संयमपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थी।

जब उसने पतिकी बीमारी और इस प्रकार उसके प्रति सबकी उपेक्षाका हाल सुना, तब वह एक नौकरको साथ लेकर ससुराल लौट आयी। आते ही उसने पूरे तन-मनसे लगनके साथ पतिकी सेवा करना शुरू कर दिया। उसको नहलाना, खिलाना, समयपर ओषधि देना आदि सब कार्य वह स्वयं अपने हाथोंसे करने लगी। उसने पतिकी बुराइयोंकी तथा उसके दुर्व्यवहारोंकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। एक कुष्ठरोगपीड़ित कामी पतिकी भी सेवा करना उसने भगवान्‌की पूजा समझा। उसने

आदर्श नारी-धर्मका पालन किया। निरन्तर सेवा-शुश्रूषा और ओषधि-सेवनसे पति थोड़े ही दिनोंमें भला-चंगा हो गया।

अब उसे अपने पूर्वके कर्मोंपर घोर पश्चात्ताप हुआ। वह पत्नीसे क्षमा माँगने लगा। पत्नीने कहा—'आप मेरे भगवान् हैं। आपकी सेवा करना मेरा धर्म है। क्षमा तो उलटे मुझे माँगनी चाहिये, जो मैं आपसे इतने दिन दूर रही।'

यह कहकर वह पतिके चरणोंमें गिरकर फूट-फूटकर रोने लगी।

पतिने उसे अपने गलेसे लगाया और प्रतिज्ञा की कि भविष्यमें वह कोई अनैतिक कार्य नहीं करेगा। आज वे पति-पत्नी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

यह है भारतीय नारीके चरित्रका एक आदर्श।

—प्राध्यापक श्याममनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०

आप मेरी भी माँ हैं

सन् १९५२ में पुराने सौराष्ट्र राज्यमें जमीनके सुधारके सम्बन्धमें कानून बना और उस कानूनके अनुसार गरासदारी और बारखली आदि जमीनें जोतनेवाले किसानोंके अधिकारमें मानी जाने लगीं और उन्हें प्राप्त करनेके लिये फार्म भरकर सरकारमें दिये जाने लगे। ऐसे किसानोंमें एक ठाकरसी पटेल नामके आदमी थे। उनके पास ३० बीघा जमीन गरासदारी और तीस बीघा बारखली थी। यों कुल ६० बीघा जमीन वे जोतते थे। उन्होंने फार्म भरकर पेश कर दिया। बारखली जमीन एक विधवा ब्राह्मणीकी थी। उस ब्राह्मणीने पटेलके पास जाकर कहा कि 'यह जमीन मेरी और मेरे पुत्रकी आजीविकाका साधन है। तुम यदि मुझ ब्राह्मण और गरीब परिवारकी आजीविका लूट लोगे तो मैं दुःखी हो जाऊँगी। आटा माँगकर मैं अपनी आजीविका नहीं चला सकती, अतएव दया करके मेरी जमीनका फार्म तुम वापस ले लो। भगवान् तुम्हारा भला करेगा।' इस प्रकार बहुत-बहुत प्रार्थना करनेपर भी पटेलका हृदय पिघला नहीं और ब्राह्मणी हताश होकर घर लौट आयी।

एक दिन उसी गाँवके एक प्रतिष्ठित और समझदार पटेलने ब्राह्मणीको सलाह दी कि 'तुम ठाकरसी पटेलके लड़के छगनके पास जाओ और उसके सामने अपनी कठिनाई रखो। आशा है कि वह कुछ करेगा। बहुत समझदार है और भला भी है'। ब्राह्मणीने छगनके पास जाकर सारी बातें बतायीं और कहा कि 'इस जमीनको तुम्हारे पिता न लें, इसलिये तुम उन्हें समझाओ

और ब्राह्मण-परिवारकी रक्षा करो।'

छगनने कहा—'मैं पिताजीको समझाऊँगा। वे मान लेंगे तो बहुत ठीक है; नहीं तो मैं आपको किसी तरह भी तीस बीघा जमीन वापस दिलवा दूँगा—यह आप निश्चय समझें।'

छगन भाईकी उत्साहवर्द्धक बात सुनकर ब्राह्मणीने समझा कि मेरा आधा काम तो हो ही गया। उसे बड़ा आनन्द हुआ। छगनने दूसरे दिन अपने पितासे बात की, पर वे नहीं माने। छगन निराश हो गया और सोचने लगा कि 'ब्राह्मणीको दिये हुए वचनके लिये अब क्या करना है।'

बहुत सोच-विचारके बाद छगनके दिमागमें एक बात आयी कि 'मैं यदि पिताजीसे अलग हो जाऊँ तो मुझे जमीनका आधा हिस्सा मिल जाय और मेरे हिस्सेमें आयी हुई जमीन मैं उस ब्राह्मणीको दे दूँ और स्वयं कहीं मजदूरी करके अपना पेट-पालन करूँ।'

इस तरह निश्चय करके वह अलग हो गया और अपने हिस्सेकी जमीन उस ब्राह्मणीके नाम करके तुरंत उसके पास पहुँचा। जाकर कहा—'लीजिये, मैं आपकी जमीन वापस करने आया हूँ। अब आप अपनी जमीनकी जैसी ठीक समझें व्यवस्था करें।'

इस बातको लगभग दस वर्ष बीत गये, तब एक दिन प्रातःकाल एक घोड़ागाड़ी छगन पटेलके दरवाजेपर आकर खड़ी हुई। उसमेंसे एक बाई नीचे उतरी और छगन पटेलसे कहने लगी—'छगन! तुमने मुझे पहिचाना है?'

'क्यों! पहिचानता कैसे नहीं?'

'तो मैं तुमसे मिलने आयी हूँ!'

'मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ!'

'देखो, भाई छगन! जो जमीन तुमने मुझे वापस दी थी, उसकी पैदावारसे मैंने गिरीशको पढ़ाया और अब वह नौकरीमें लग गया है, अच्छा वेतन पाता है। यह सब तुम्हारी त्यागभावनापूर्ण वृत्तिका फल है, मैं जीवनभर तुम्हारे उपकारको कभी नहीं भूल सकती, तथापि मैं अपने मनकी शान्तिके लिये तुम्हारी दी हुई जमीन तुम्हें वापस दे रही हूँ और इसके साथ ही मेरे रहनेका मकान भी तुम्हें उपहाररूपमें दे रही हूँ।'

इस प्रकार कहते-कहते ब्राह्मणीका हृदय विचित्र भावनाओंसे भर गया। इसके जवाबमें छगनने इतना ही कहा—'आप अकेले गिरीशकी ही माँ नहीं हैं, मेरी भी माँ हैं'—और वह उसके चरणोंमें लुढ़क पड़ा। 'अखण्ड आनन्द'

—हरजीभाई गाँडाभाई दलबाड़ी

आज भी सत्ययुगके लोग हैं

खरगौनमें श्रीदयारामजी कुम्हार और उनकी धर्मपत्नी सौ० गंगाबाई अपने परिवारसहित रहते हैं। एक दिन सौ० गंगाबाई रेवाबाई रघुवंशीके घर कचरा लाने गयी थीं। टोकरीमें कचरा भरकर घर लायीं और उसे एक जगह रख दिया। उस कचरेकी टोकरीको जब श्रीदयारामजीने जमीनपर उँड़ेला तो उसमें उनको एक चमकदार वस्तु दिखायी दी। उन्होंने झट उठाकर देखा तो वह सोनेकी कंठी थी। सोनेकी कंठी कचरेमें देखकर श्रीदयारामजीको बहुत ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने तुरंत गंगाबाईको बुलाकर पूछा कि 'आज कचरा किनके यहाँसे आया है।' सौ० गंगाबाईने कहा कि 'आज तो मैं केवल रेवाबाई रघुवंशीके यहाँ ही गयी थी और वहींसे कचरा भरकर लायी हूँ।' तब श्रीदयारामजीने वह सोनेकी कंठी बतायी और कहा कि 'यह कंठी इसी कचरेकी टोकरीमेंसे निकली है।' कंठी देखकर गंगाबाईको भी आश्चर्य हुआ। तब श्रीदयारामजीने कहा कि 'तुम तुरंत जाओ और रेवाबाईको यह कंठी दे आओ, वह बेचारी ढूँढ़ती होगी और दु:खी होगी।'

तब सौ० गंगाबाई उस सोनेकी कंठीको लेकर रेवाबाई रघुवंशीके यहाँ गयी और उनसे पूछा कि 'तुम्हारी कोई चीज गुम तो नहीं हो गयी है?' तब रेवाबाईने कहा कि—'क्या कहूँ, बहिन! बच्चोंने सोनेकी कंठी न मालूम कहाँ गिरा दी है, कुछ पता नहीं चलता। सारा घर ढूँढ़ लिया, पर कहीं मिली नहीं। हम सब परेशान हैं।' यह सुनकर सौ० गंगाबाईने हँसते हुए वह कंठी रेवाबाईके हाथोंमें सौंप दी और कहा कि 'दु:खी होनेकी आवश्यकता नहीं है। यह कंठी अभी मैं जो आपके घूरेपरसे

गधोंके लिये कचरा भरकर ले गयी थी, उसी कचरेकी टोकरीमें घरके लोगोंको मिली है। उन्होंने मुझे तत्काल आपको दे आनेके लिये भेजा है। इसीसे मैं अभी देने आ गयी। अपनी कंठी सँभालो और चिन्ता छोड़ दो।' ये सारी बातें सुनकर रेवाबाईको अपार हर्ष हुआ और उन्होंने कंठी लेकर रख दी।

बादमें रेवाबाईने अपने सारे परिवारको पास बुलाकर श्रीदयाराम तथा उनकी धर्मपत्नी सौ० गंगाबाईको भी बुलाया और परिवारवालोंसे कहा कि 'आजसे तुम इनको भी अपने परिवारका समझना और जब भी अपने परिवारमें विवाह आदि कार्य हों, तब इनको भी बराबर आमन्त्रित करते रहना और आदरपूर्वक भोजन कराना।'

तबसे आजतक रेवाबाईके परिवारवाले सम्पन्न होनेपर भी इस गरीब कुम्हार-दम्पतिको बराबर आमन्त्रित करते हैं और उनका भोजनादिसे प्रेमके द्वारा आदर-सत्कार करते हैं। आज रेवाबाई नहीं हैं, उनका स्वर्गवास हो गया है। परंतु श्रीदयाराम और उनकी धर्मपत्नी सौ० गंगाबाई जीवित हैं और रेवाबाईके परिवारद्वारा होनेवाले स्वागत-सत्कारकी सराहना करते हैं। यदि श्रीदयाराम और उनकी धर्मपत्नी सौ० गंगाबाई सोनेकी कंठीसे मोह करते और नहीं लौटाते तो पापके भागी होते और जीवनभरके स्वागत-सत्कारका अवसर नहीं पाते। परंतु उक्त गरीब कुम्हार-दम्पतिने सोनेकी कंठीका मोह न कर अपनेको पापसे बचा लिया और एक आदर्श उदाहरण उपस्थित किया। वास्तवमें आज इस घोर कलियुगमें भी सत्ययुगके कुछ लोग विद्यमान हैं। मुझे उक्त दम्पतिका प्रत्येक बार खरगौन जानेपर चरण छूनेका सौभाग्य मिलता है, यह मेरा अहोभाग्य है। मैं दोनोंके चरण छूकर अपनेको कृतार्थ मानता हूँ।

—विष्णुराम सनावद्या 'सुमनाकर'

दयाकी एक झलक

यह बात सन् १९६३ की है। पंचायत-समिति कोटड़ामें जोगीबड़ नामक एक ग्राममें बाँसकटाईके कार्यपर एक सरकारी नौकर कार्य करता था। जोगीबड़में ही कोटड़ाके एक मुसलमान सज्जनकी दूकान है जो अजीजभाई फौजदारके नामसे विख्यात है। एक दिन इस सरकारी नौकरने किसी लड़कीके साथ छेड़खानी की। उसपर अजीजभाई फौजदारने सरकारी नौकरको समझाया एवं कुछ शिक्षाप्रद बातें कहीं, परंतु उनका सारा समझाना बेकार हुआ। आखिरमें सरकारी नौकर एवं अजीजभाईके बीच बोलचाल बंद हो गयी और उससे वहाँ एक लड़ाईका-सा रूप बन गया। अजीजभाईने उसको एक चाँटा मार दिया। उसपर सरकारी नौकरने एस० डी० ओ० ऑफिस, कोटड़ामें मुकदमा चला दिया कि 'एक सरकारी व्यक्तिको पीटा गया।' इस मुकदमेकी कार्यवाही शुरू हुई। फैसलेमें बम्बु मार्ट सरकारी नौकरको ५१ रु० जुर्माना एवं एक दिनकी सजा (जेल) मिली। फैसलेके समय अजीजभाई भी वहीं मौजूद थे। फैसला सुनकर वे इस सोचमें पड़ गये कि 'यह व्यक्ति पैसा कहाँसे लायेगा? एवं सजा होनेपर इज्जत जायगी।' सरकारी नियमानुसार रुपये जमा करना जरूरी था। उस समय अजीजभाईके दिलमें दयाकी एक लहर दौड़ी और उन्होंने अपनी जेबसे ५१ रु० निकालकर कोर्टमें जुर्माना जमा करा दिया और एक दिनकी सजाको भी पूरी कोशिश करके माफ करवाया। जब यह बात उस सरकारी नौकरको मालूम हुई तो उसकी आँखोंसे कृतज्ञताके आँसू उमड़ पड़े। उसने अपनी गलती स्वीकार की और क्षमा माँगी।

इस प्रकारके उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

—विजयसिंह राव, आमेट

उपकार

दूसरी एल्-एल्० बी० परीक्षाका पहला दिन था। छः-छः महीने रातों जगकर परिश्रम किया था। जवानीके कीमती छः महीने इसीमें लगाये थे। अब हुआ यह कि परीक्षाके लिये समयसे पहले नहीं आ सका। परीक्षाके दिन ही अहमदाबाद पहुँचा और स्टेशनसे सीधे ही लॉ कॉलेजकी तरफ दौड़ा। लॉ कॉलेज पहुँचा, उस समय १० बजकर ५० मिनट हो चुके थे। परीक्षा १० बजकर ३० मिनटपर शुरू होनेवाली थी। यों २० मिनट मुझे देर हो ही गयी; पर लॉ कॉलेज पहुँचनेपर पता लगा कि इस बार परीक्षा लॉ कॉलेजमें न होकर गुजरात कालेजमें होगी। मेरे तो मानो प्राण-से ही निकलने लगे। शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। १० मिनटसे भी कम समय शेष था। न पहुँच सका तो युनिवर्सिटीके कानूनके अनुसार पेपर नहीं मिलेगा।

मैं मुट्ठी बाँधकर गुजरात कॉलेजकी ओर दौड़ा। लगभग १०० कदम दौड़ा हूँगा कि एक युवक साइकिलसे आता हुआ सामने मिला। पता नहीं क्यों, मैंने उस युवकको तुरंत रोका और उससे कहा—'भाई! मेरी आज दूसरे वर्षकी एल्-एल्० बी० की परीक्षा है, देर हो गयी है, गुजरात कॉलेज जल्दी पहुँचना है। तुम अपनी साइकिल दे दोगे?'

मेरे आश्चर्यके बीच उसने तुरंत ही मुझे साइकिल दे दी। न जान न पहचान। आजकलका अविश्वासका वातावरण, जहाँ प्रतिदिन धोखेबाजीके किस्से बनते हैं।

परंतु उसने तो साइकिल दे दी। केवल इतना ही कहा—

'सुपरवाइजरको चाभी दे दीजियेगा।' मैं समयपर पहुँच गया और मुझे इस पेपरमें डिस्टिंशन मिला। इसमें मेरा परिश्रम तो था ही, पर उस युवकके उपकारका भी हिस्सा अवश्य था।

उसके बाद उस युवकसे मिलना नहीं हुआ, पर उसकी मीठी याद बार-बार आया करती है और मनमें आता है कि उसका ऋण कब चुका सकूँगा। 'अखण्ड आनन्द'

—जयकान्त ज० रावल

ईश्वरकी लीला अपरम्पार है

जीवनमें कई बार ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं जिनके मर्मतक पहुँचनेमें बेचारी बुद्धि भी कुण्ठित हो जाती है। ऐसी ही एक घटनाने मेरी बुद्धिके सामने आजतक प्रश्नचिह्न उपस्थित कर रखा है।

ग्वालियरसे भाभीका पत्र आया कि 'यदि अवकाश हो तो कुछ दिनोंके लिये चले आओ। पिताजी बहुत याद करते हैं।' घर गये काफी अरसा हो चुका था और मुझे उन्हीं दिनों कार्यवश आगरा भी जाना था। लौटती डाकसे मैंने लिख दिया— 'सोमवारको प्रातः पंजाबमेलसे चलकर दोपहरमें आगरा उतरूँगा और वहाँसे तीन बजेकी मद्रास-जनतासे चलकर आपके पास शामको पहुँच जाऊँगा।'

आगरेमें क्लेमकी कुछ जरूरी कार्यवाही पूरी करनी थी। काम अधिक नहीं था। कुछ कागजोंपर केवल दस्तखतभर करवाने थे। समयपर मैं वहाँ पहुँच गया। क्लेमके कार्यालयमें गया तो पता चला कि आफिसर साहब ही अभीतक तशरीफ नहीं लाये। बारह बज चुके थे। इंतजारके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं था और भी कई आदमी मेरी तरह मन मसोसकर बैठे थे और सरकारी अधिकारियोंकी इस स्वेच्छाचारितापर आलोचनाएँ कर रहे थे। मैं भी उनमें शरीक हो गया। दो बजे कहीं जाकर पता चला कि अधिकारी महोदय तो दूसरे दरवाजेसे अंदर प्रवेश कर चुके हैं। कार्यवाही आरम्भ हुई। प्रायः चार बजे मेरी बारी आयी और साढ़े चारतक मैं मुक्त हो गया। गाड़ी निकल चुकी

थी। दिलमें बहुत कुढ़ा। पास ही बस-स्टैंड था। पूछनेपर पता चला कि ग्वालियरके लिये बस तैयार है। उसीमें बैठ गया। रातको नौ बजे बस ग्वालियर पहुँची।

घर पहुँचा तो मौत-सी चुप्पी छायी देखकर मन शंकित हो उठा। कुछ समझ न सका। अंदर लपका तो माँ रोती हुई मेरी ओर दौड़ी और मुझे गलेसे लिपटाकर मेरी कुशलताकी सौ-सौ दुआएँ ईश्वरसे माँगने लगी। माजरा क्या है? मेरी समझमें कुछ भी न आया तो झिड़ककर मैंने पूछा—'माँ! रो क्यों रही हो? कुशल तो है न?' इतनेमें दौड़ी-दौड़ी भाभी भी आ गयीं। सारी गुत्थी उन्होंने सुलझा दी—'बड़े भाई साहब तुम्हें लेनेके लिये स्टेशन शामको गये थे तो उन्हें पता चला कि मद्रास-जनता आगरा और ग्वालियरके बीच किसी मालगाड़ीसे टकराकर दुर्घटनाग्रस्त हो गयी है और भारी संख्यामें यात्री हताहत हुए हैं। घर इत्तला देकर भाई साहब शामसे गाड़ी लेकर उधर ही गये हैं। तुमने उसी गाड़ीसे आनेको लिखा था न? फिर?'

मैं अवाक् रह गया। मेरा मस्तक गाड़ीके चक्केकी तरह घूमने लगा। यदि क्लेम-आफिसर समयपर आ जाते तो मैं निश्चय ही अपने निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार मद्रास-जनतापर चढ़ता और ....और.......कालके मुँहमें जा गिरता!

ईश्वरकी भी कैसी विचित्र लीला है।

—कौटिल्य उदियानी

माताके अमोघ शुभाशीर्वादका फल

मेरे पूज्य पिता स्वर्गीय पं० प्रयागदीनजी शुक्ल फैजाबाद कमिश्नरीके तत्कालीन मुंसरिम थे। सन् १९०२ या १९०३ की बात है। उन दिनों मेरी अवस्था पाँच वर्षकी थी और मैं अबोध बालक था। हमलोग महाजनी टोलेमें एक किरायेके घरमें रहते थे जो दो मंजिला था। दैवयोगसे एक दिन मैं न जाने कैसे ऊपरकी छतपरसे गिर पड़ा। सिरमें ऐसी चोट आयी कि मैं बेहोश हो गया और मेरे मुँह, नाक एवं कानसे रुधिर बह चला। उन दिनों वहाँ एक मुसलमान डॉक्टर मेरे पिताजीके मित्र रहते थे। डॉक्टर साहब तत्काल आ गये और मेरी मरहम-पट्टी हुई तथा उनकी चिकित्सासे मैं एक सप्ताहमें लगभग ठीक हो पाया, किंतु डॉक्टर साहबने मेरे पिताजीसे कहा था—'इस बच्चेके दिमागमें ऐसी चोट लगी थी कि इसके बचनेकी आशा नहीं थी और अब अगर आप इसकी जिंदगी चाहते हैं, तो इससे कोई भी दिमागी काम मत लीजियेगा।'

मेरी माता कोसलाधीश सरकार राघवेन्द्रकी परम उपासिका और रामचरितमानससे इतना प्रेम रखती थीं कि गृहस्थीके साधारण संकटोंमें भी हमेशा अखण्ड पाठका अनुष्ठान आरम्भ कर अकेले ही या मेरी बड़ी बहिनकी सहायतासे २४ घंटोंके भीतर ही पाठ समाप्त करके हवन इत्यादि कर डालती थीं, तब उठती थीं। मुझे स्मरण है कि दूसरे दिन जब मैंने आँखें खोलीं, तब वे '**आरति श्रीरामायनजीकी**' गा-गाकर अपनी रामायणजीकी आरती उतार रही थीं और पिताजी हाथोंमें पुष्प लिये खड़े-खड़े

सामने युगल सरकारके सिंहासनको एकटक देख रहे थे। आरती हो गयी, पुष्पवर्षा भी हो गयी, प्रसाद बँटा और माताने सस्नेह मेरे मस्तकपर अपने पाणिपंकज फेरते हुए यह कहा था कि—

'अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥'

सजल नयन गद्‌गद स्वरसे पिताजीने भी मेरा हाथ पकड़कर उनके श्रीचरणोंसे छुआ दिया और यह कहा कि 'बेटे! अब तुम बिलकुल अच्छे हो गये हो।'

इसके पश्चात् मेरी पढ़ाई-लिखाई उक्त डॉक्टरकी सलाहके कारण मन्दगतिसे ही चलती रही और मेरा पालन-पोषण भी लाड़-दुलारसे कुछ इस प्रकारका हुआ कि मैं हाईस्कूल भी न पास कर पाया। इसके बाद सन् १९२६ में पिताजी, जिन्होंने अब डिप्टी कलेक्टरीसे अवकाश प्राप्त किया था, गाँवमें रहने लगे। इधर माताका स्वास्थ्य कुछ ऐसा बिगड़ा कि वे अगस्त १९२७ की २४ तारीखको ब्राह्ममुहूर्तमें गोलोकवासिनी हो गयीं। पिताजीको उनके निधनसे ऐसी चोट पहुँची कि वे बहुधा मौन रहने लगे और अपना समय अधिकतर धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने और पूजा-पाठमें बिताने लगे। मुझे इसी बीच एक अंग्रेजोंके बड़े फर्ममें, जो सी० एल० सी० के नामसे प्रसिद्ध था। जिसका हेडक्वार्टर मद्रासमें था, नौकरी आगरेमें मिल गयी। मैं वहाँ मोहल्ला नामनेरमें डॉक्टर कालीचरण दुबेकी कोठीमें रहकर काम किया करता था और हजारों रुपयोंका माल वहाँ गोदाममें रखा रहता था। १२ सितम्बर १९२० की रातको मुझे इसी घरमें डाकुओंने घुसकर गोरखोंवाली भुजालीसे ऐसा घायल किया कि मेरा दाहिना हाथ तो बिलकुल बेकार हो गया—कुहनी और कलाईकी

हड्डियाँ बाहर निकल पड़ीं। बायें हाथमें भी गहरा घाव लगा और हड्डी कट गयी। गाल तथा ठुड्डीपर भी चोटें लगीं और एक घाव बायीं तरफ छातीमें ऐसा लगा कि लगभग फेफड़ोंतक पाँच इंच लंबा घुस गया—डाकू कुछ ले न जा पाये और भागे, परंतु मुझे मरा हुआ ही समझकर वे वहाँ छोड़ गये थे।

मुझे अस्पतालमें छः महीने लगे। मौतसे लड़ाई भी होती रही। डॉक्टर लोग हाथोंको काट डालनेके लिये तैयार थे, परंतु मैंने उस दशामें भी उन्हें हाथ काटनेसे यह कहकर रोक दिया कि 'मेरे हाथों बिना जिंदगी किस कामकी होगी—मैं अमर तो हूँ नहीं, इसलिये मुझे आप मर जाने दें, मैं हाथ न कटवाऊँगा।' रुग्णावस्थामें चारपाईपर पड़े-पड़े मैं अपनी माताका स्वप्न देखा करता और उनके आशीर्वादके सहारे यही सोचता रहता कि मैं मर नहीं सकता। धीरे-धीरे वास्तवमें मैं स्वस्थ हो ही गया और अब मेरे दोनों हाथ ठीक हैं। केवल दाहिना हाथ कुछ खराब है—क्योंकि मैं उससे खा-पी तो नहीं सकता; परंतु लिखता उसीसे हूँ। बायाँ हाथ बिलकुल ठीक है, जिसके सहारे खाता-पीता हूँ। मोटर साइकिल, मोटरकार, साइकिल इत्यादि सब चला लेता हूँ और कुएँसे पानी भी भर लेता हूँ तथा आज ६७ वर्षकी अवस्थामें भी एक युवककी तरह मीलों चल-फिर लेता हूँ। लोग कहने लगते कि 'तुम तो युवावस्थावालोंको भी मात करते हो।' इस जर्जरावस्थामें भी मुझे यह सुलभ है और अजरका अर्थ भी यही तो होता है तथा डाकुओंके घातक प्रहारसे बचना ही तो अमरता थी। फिर मैं वैसे कोई परीक्षा पास नहीं हूँ—परंतु लिखने-पढ़नेमें, बोल-चालमें, हिंदी और अंग्रेजी आदि इतनी अच्छी जान गया हूँ कि मुझसे यह कोई भ्रमसे भी नहीं कह

सकता कि मैं किसी युनिवर्सिटीका ग्रेजुएट नहीं हूँ। यही 'गुणनिधि' के लक्षण भी हैं। तो 'अजर', 'अमर', 'गुणनिधि' के ये सब लक्षण केवल माताके आशीर्वादके ही फल हैं। जो कोई चाहे आकर साक्षात् इसकी सत्यताकी परीक्षा कर ले। मैं निरभिमान उसे विश्वास दिलाता हूँ कि वह इस चमत्कारको देखकर चकित हो जायगा। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि माताके उस आशीर्वादने ही मेरी रक्षा करके मुझे अजर, अमर और गुणोंसे युक्त इतना सम्पन्न अबतक बनाये रखा है। धन्य हैं युगल सरकार, जिन्होंने माताकी लाज रखकर मुझे ६७ वर्षका ऐसा और इस योग्य किया कि मुझे लोग देखें-सुनें और समझें तथा भगवान्‌में आस्था रखकर संसार-सागरको पार करें।

—रामकृपाल शुक्ल

मानवताके उदाहरणकी तीन सच्ची घटनाएँ

(१)

१९४७में भारतके विभाजनके समय जो दंगे हुए थे, उनकी बात किसे याद नहीं है। आज भी उन्हें याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पेशावरमें ये ही दंगे चल रहे थे। हिंदूलोगोंको अपना सब कुछ छोड़कर भागना पड़ रहा था। नामको तो सरकार थी, पर चलती थी केवल गुंडोंकी। ऐसे समय स्वर्गीय डॉ० खान साहब हाथमें एक मोटा-सा डंडा लिये कंधेपर एक तौलिया डाले सारे शहरमें घूम रहे थे; जहाँ हिंदुओंको कठिनाईमें देखते, वहीं अपना सोटा टेककर खड़े हो जाते और चिल्लाकर कहते 'हिम्मत हो तो हिंदुओंपर हाथ उठानेसे पहले मुझे खत्म कर दो। मैं तुम्हें इनका खून न बहाने दूँगा।' खुदाई खिदमतगारकी ललकारके सामने खड़े रहनेकी हिम्मत उन भीरु गुंडोंमें कहाँ! सब तितर-बितर हो जाते। खान साहब जानते थे कि घटनाक्रम इस प्रकारसे चल रहा था कि हिंदूमात्रका वहाँ रहना असम्भव था। वे अपने-आप उन पीड़ितोंको भारत पहुँचानेकी व्यवस्था कर देते और उनके सामानको अपने कब्जेमें लेकर किसी-न-किसी मुसलमानके द्वारा उसके मालिकके पास भिजवा देते। सरहदी सूबेसे आये हुए सैकड़ों ही नहीं, हजारों शरणार्थी डॉक्टर खान साहबकी इस मानवताके साक्षी हैं

(२)

दूसरी घटना भी पेशावरकी ही और उन्हीं दिनोंकी है। मेरे एक परिचित सज्जनके मकानपर मुसलमान-भीड़ने आक्रमण

किया। वे सज्जन रावलपिंडी गये हुए थे। उनका लड़का घरमें अकेला था। भीड़ ऊपर चढ़ आयी और लड़केसे माल-मतेके बारेमें पूछने लगी; लड़केको साक्षात् यमराजसे काम पड़ गया। अचानक उसे भगवान्‌का नाम याद आ गया। बाहरसे किसीने आवाज लगायी—'पुलिस! पुलिस!!' भीड़में खलबली-सी मच गयी; सब तितर-बितर हो गये और लड़का भी भीड़के साथ मिल गया तथा घरसे बाहर निकल गया।

(३)

तीसरी घटना एक छोटे-से लड़केकी है, होगा कोई बारह वर्षका। वह अपने जीवनमें पहली बार रेलयात्रा कर रहा था, घरसे टिकट और रास्तेके खर्चके लिये पाँच रुपये लेकर चला था। रेलकी पटरीके दोनों ओरके दृश्य देखते-देखते लड़केका मन नहीं भरता था। कभी इस खिड़कीपर जाता, कभी उस खिड़कीपर। इतनेमें टिकट-चेकर आया। लड़का बैठा रहा; उसे किसका डर था, टिकट तो जेबमें ही था। चेकरने पास आकर टिकट माँगा। लड़केने जेबमें हाथ डाला और उसके पैरोंसे जमीन खिसक गयी। बटुआ ही गायब था। या तो किसीने निकाल लिया या खिड़कीमेंसे गिर गया। पर अब वह करता भी क्या? असहाय बालक रो पड़ा। चेकर अपनी बहादुरी दिखाता जा रहा था—गालियोंकी बौछार और बीच जंगलमें उतार देनेकी धमकी। भगवान्‌के सिवा अब कौन सहारा था। सारे डिब्बेमें सन्नाटा छाया था। पर परायी आगमें कौन पड़े? सभी बुद्धिमान् लोग थे। थोड़ी देरतक यही चलता रहा। क्रूर चेकर शायद घरसे लड़कर आया था और यहाँ अपनी बहादुरी दिखा रहा था।

डिब्बेके दूसरे छोरपर बैठे एक गरीब आदमीसे बच्चेका यह

कष्ट न देखा गया। वहींसे चिल्लाया, 'बाबू साहब खबरदार, अगर जबान खोली तो। आप मासूम बच्चेके चेहरेपर ईमानदारी नहीं देख सकते? लानत है आपपर। आप देख नहीं सकते, बेचारा बच्चा इतना सामान लेकर जा रहा है, क्या यह बिना टिकट हो सकता है? बोलिये, कितना देना पड़ेगा इसे? मुझसे ले लीजिये और उसकी जान बक्स दीजिये।' टिकट बाबूको पैसा देकर उस देवताने बच्चेसे कहा—'बेटे! फिक्र मत करो, भगवान् सबकी मदद करता है। मैंने कुछ नहीं किया। भगवान्ने तेरी मदद की। मैं गरीब आदमी हूँ। मेरा पता ले ले। अगर भगवान् तुझे पैसा दे तो मेरे रुपये वापिस कर देना; वरना इस सारे मामलेको भूल जाना।' लड़का अपना पता देना चाहता था, पर उस सज्जनने कहा—'नहीं बेटे! मैं इस घटनाको याद नहीं रखना चाहता।' यह कहकर वह मानवरूपी देव अपने स्थानपर जा बैठा।

—श्रीरवीन्द्र

शिक्षितोंका कर्तव्य

स्व० श्री० वा० मो० शाह एक छात्रालयका संचालन करते थे। उस छात्रालयमें एक दिन एक विद्यार्थीने 'हाउस-मास्टर'से शिकायत की कि 'आज नौकरने जल नहीं भरा।' हाउस-मास्टरने नौकरको बुलाकर उसपर छड़ी फटकार दी। अन्तमें शिकायत आयी वा० मो० शाहके पास। उन्होंने हाउस-मास्टरसे पूछा कि 'तुमने कभी घर और उसकी व्यवस्था देखी भी है या नहीं?' परंतु वह बेचारा तो अभी अविवाहित था, अतएव प्रश्नका सच्चा अभिप्राय नहीं समझ पाया। परिणाममें वा० मो० शाहने फिर स्पष्टरूपसे पूछा कि 'तुम्हारी माता या पत्नी किसी दिन कोई काम करना भूल जायँ या खूब थकी होनेके कारण न कर सकें तो क्या तुम उन्हें लकड़ीसे मारोगे?' परंतु 'घर' और 'कुटुम्ब'की भावनाका स्पर्श न कर सकनेवाला वह 'हाउस-मास्टर' क्या उत्तर देता? वा० मो० शाहने समझ लिया कि इस जगहपर किसी विवाहित पुरुषको ही रखना चाहिये। अतएव उसके साथ कोई विवाद न करके उसका काम किसी बाल-बच्चेदार आदमीको सौंपनेका उन्होंने निर्णय कर लिया; फिर शिकायत करनेवाले विद्यार्थीको बुलाकर पूछा कि 'तुम्हारी माँ यदि किसी दिन जल देना भूल जायँ तो तुम बासी जल पीओगे? या अपने हाथसे भरकर जल पी लोगे?' इस विद्यार्थीको उन्होंने समझाया कि 'नौकरकी भूल तो थी ही, परंतु तात्कालिक उपायके रूपमें विद्यार्थीको स्वयं पहले जल भर लेना चाहिये था और उसके बाद ही शिकायत करनी

चाहिये थी। उच्च शिक्षाप्राप्त विद्यार्थी जब अपने पीनेका पानी स्वयं नहीं भर लेने-जितने कर्तव्यको नहीं समझ सकता तो फिर आठ रुपयेके अपढ़ नौकरसे 'कर्तव्य' पालनकी आशा कैसे रखी जा सकती है।' 'अखण्ड आनन्द'

—त्रिभुवन विरजीभाई हेमाणी

भक्तकी ईमानदारी

रतनगढ़ शहरसे थोड़ी दूर एक टीबेपर प्रकृतिकी सुरम्य स्थलीमें भगवान् श्रीहनुमान्जीका एक मन्दिर है। वहाँ अपंग, बेघर-बारके भक्त लोग आश्रय पाते हैं। श्रीभानीरामजी महाराज वहाँ विराजते हैं; अतः उस स्थानका नाम 'भानीघोरा' हो गया है। उनमेंसे एक श्रीसुखराम नामके सज्जन भी वहाँ रहते हैं। आप जोधपुरके हैं, लेकिन रहते भानीघोरा ही हैं। आप बाजारसे आश्रमके लिये सामान आदि लानेका कार्य करते हैं। २९ अप्रैल १९६५ बुधवारकी शामको ४ बजे जब आप बाजारमें घंटाघरके पाससे गुजर रहे थे, तो एक ताँगेके पहियेके पास आपको दबा हुआ एक बटुआ मिला, जिसमें ५,४२१ रुपये कुछ पैसे पाये गये थे। आपने वह बटुआ अपने थैलेमें रख लिया और आप उसके मालिककी तलाशमें इधर-उधर चक्कर लगाने लगे।

वह बटुआ छापरके श्रीगुमानीरामजी दूगड़का था जो रतनगढ़ पचीस-तीस भरी सोना बेचने आये थे। दूगड़जीने ज्यों ही सिगरेटके लिये जेबमें हाथ डाला कि वह गिर पड़ा, अशोकस्तम्भके पास फिर हाथ डाला तो बटुआ नदारद था।

'आप वहीं भौंचक्के-से हो गये और पागलकी तरह चिल्लाने लगे। करीब छः बजे श्रीसुखरामजी स्टेशनकी तरफ उन्हें ढूँढ़ने गये तो रास्तेमें सेठजीको पागलकी तरह देखा, तब उन्होंने उनसे कुछ बातें पूछकर यह जान लिया कि बटुआ उन्हींका है और वह बटुआ उनको दे दिया। बटुआ पाते ही सेठजी

फिर भौंचक्के से हो गये। होश आनेपर सेठजी श्रीसुखरामजीको पाँच सौ भेंटमें देने लगे किंतु आप तो वहाँसे 'जय सियाराम' कहकर 'भानीभोरा' आ गये।'

यह घटना आँखों-देखी सर्वथा सत्य है।

—एल० डी० महर्षि, कोविद

यह संसार ओसका मोती

झाँसीसे दतियाकी ओर राजमार्गपर चौथे मीलका स्तम्भ एक पुलियाके निकट खड़ा है। १८ फरवरी १९६५ के सायंकाल साढ़े पाँच बजे हमारी लारी इस पुलियापरसे गुजर रही थी। एक दश-वर्षीय बालक सड़कके बीचोबीच आगे चला जा रहा था। हार्न देनेपर वह इंजिनके समीप ही आ गया। ड्राइवरने बचावके लिये लारीको एक ओर मोड़ दिया। लड़का भी हक्का-बक्का होकर उधर ही मुड़ पड़ा। मुश्किलसे एक फुट दूरीपर लड़केको बचाते हुए ड्राइवरने लारी रोकी।

लड़का तो बचा ही, लारी भी मीलके पत्थरकी टक्करसे बची। पक्की सड़कसे हटकर कच्ची कगारपर गाड़ी तिरछी होकर ऐसी रुकी जहाँसे आगे कहानी कुछ दूसरी होती। ब्रेक न सधता, तनिक और बढ़ती तो किनारेके तीन फुट गहरे, पाँच फुट लंबे गड्ढेमें गिरती। ऐसे गड्ढे पी० डब्लू० डी० वाले सड़कपर मिट्टीकी सुन्दरता बिछानेके लिये खोद रखते हैं।

ड्राइवरका कमाल समझा जाय या भगवान्‌का करिश्मा या सवारियोंकी अपनी किस्मत। गाड़ी गड्ढेसे फुटभर दूर ही रुक गयी। स्पष्ट था कि लारी उधर बढ़ती तो सँभल न पाती। उलटकर वह दूसरी ओर गड्ढेके आगे दस-बारह फुट गहरी और काफी लंबी-सी एक खाईमें कलाबाजी दिखाती हुई चूर-चूर हो जाती। दूर उधर खेत और सड़कके बीचमें बरसाती पानीके जमावकी यह खाई कब्रिस्तान बननेसे बच गयी।

ज्यों ही लारी रुक पायी, चालक शान्तभावसे उतरा। बालकको दिलासा देते हुए उसने कहा—'ऐसे न चला करो। तुम भी बचे और सवारियोंकी जान बची। मरनेमें कसर न थी।

किसके लड़के हो? कहाँ जा रहे हो?'

लड़केने बताया, 'वह नाईपुत्र है। दो मील आगे सिमरधा गाँवमें एक ब्याहमें जा रहा है। माँ-बाप उसे घरपर अकेला छोड़कर दावत खाने वहाँ गये हैं।' इसलिये वह गुस्सेमें भरा चला जा रहा था। माँ-बापपर उसे इतना क्रोध था कि मर जानेसे भी उसे डर न था।

विवाहोंके सीजनमें ठसाठस भरी गाड़ीमें दो छोटी बहुओं और एक गँवई दूल्हेके अतृप्त अरमानोंने ही शायद सबके प्राण बचाये। किसीने लड़केसे कहा—'अरे, तू नहीं डरता, तो न सही। पर आज तूने हम सभीकी जान ली होती। भगवान् ही सीधा था जो सभी बच गये। हम सभीका भाग्य अच्छा था जो दुबारा जन्म हुआ।'

मैंने कहा—'भाई! हमारा भाग्य तो बड़ा लीचड़ है। भाग्य तो लड़केका ही चोखा है, जिसमें इतनी हत्याएँ बिलकुल नहीं लिखी थीं—नहीं तो नर-संहारमें देर क्या थी।'

'जान तो बची, पर फटीचर गाड़ीकी बाकी चालने नीचेका कोई पिन निकाल दिया। फिर तो वह ऐसी बिगड़ी कि दो घंटेतक सुधरनेका नाम न लिया।' सवारियाँ झल्लाती रहीं। मैं तो चार घंटेकी जल्दीके पीछे आगरासे झाँसीतक मेलका चक्कर लगाता हुआ दतिया वापस जा रहा था। मेल दतियापर रुकती नहीं। समय और पैसा तो व्यर्थ गया। पर होते-होते बचनेवाली एक भयंकर दुर्घटनाने दो बड़े मन्त्र दे दिये—और

जैसो मोती ओसको, तैसो यह संसार।
नर चेता नहिं होत है, प्रभु चेता अनिवार॥

—हरिमोहनलाल श्रीवास्तव, एम्० ए०, एल्० टी०

सूक्ष्म जगत्में महात्माओंका अस्तित्व

सन् १९६० में जब मैं चारोंधामकी यात्राके लिये निकला तो मेरे पास कुछ भी नहीं था। वैसे तो कभी भी मेरे पास कुछ नहीं रहता। एक साधु-संन्यासीके भेषमें जगत्-संचालन करनेवाली उस शक्तिके आध्यात्मिक अन्वेषणार्थ ही मैंने यह कार्यक्रम बनाया था।

गंगोत्री जानेपर गंगा माताके उद्गमस्थान (जो कभी गंगोत्रीमें ही रहा होगा) गोमुखी जानेकी तीव्र आकांक्षा हुई। वैसे पूर्वसे ही ऐसी धारणा थी, किंतु साधन होनेपर ही जाना हो सकता है, बहुत कठिन मार्ग है, ऐसा सुनकर कुछ निश्चय नहीं कर पाया था।

गंगोत्रीमें कुछ दिन ठहरकर प्रबल विचार-शक्तिके महापुंजका निर्माण कर रहा था कि अचानक महाभगवती गंगापर एक महात्मा, जो यात्री ही थे, मुझे गोमुखीके लिये प्रेरणा देने आये। उनके साथ दो भक्त भी थे। अतः दूसरे ही दिन हमलोगोंने प्रस्थान किया।

रास्तेमें काली कमलीकी धर्मशालामें एक रात्रि विश्राम करके जो आगे बढ़े तो रास्तेमें एक महात्माका आश्रम था। अब हमें आगेके मार्ग-दर्शनकी सुविधा एवं अन्य चाय आदिकी सुविधा भी वहीं मिली। उस दिन गंगा-दशहरा था। रास्तेमें पड़नेवाली एक नदी धूप पड़नेसे बढ़ जाती है। अतः हमें शीघ्र ही लौटना चाहिये—ऐसा निर्देश मिला। किंतु रास्तेमें रेतके पर्वतोंपर बिना किसी आधारके चलना बहुत कठिन प्रतीत

हो रहा था। एक स्थानपर सहसा मैं गिरते-गिरते बचा। वास्तवमें गंगामाईका स्मरण ही मुझे बचा सका था, किंतु एक अन्य स्थानपर पाँव फिसलनेसे मैं एकदम नीचे गिर पड़ा। यह स्थान एकदम गंगाजीमें था। गोमुखीके मार्गमें चिह्नस्वरूप बड़े पत्थरोंपर छोटे पत्थर रखे हुए होते हैं। उन्हींके आधारपर क्वचित् जानेवाले यात्री जाते हैं, पुनः जो जिस मार्गसे जाता है, वहीं उसी प्रकारके पत्थर रखता हुआ भावी मार्ग-प्रदर्शनकी रूप-रेखा स्थापित करता है। एक बार मार्ग भूलनेपर बहुत भटकना पड़ता है।

मैं थियोसॉफिकल सोसाइटीका सदस्य हूँ। इस संस्थाकी मान्यताके अनुसार संस्थाके आद्य प्रवर्तक जीवन्मुक्त महात्माओंका अस्तित्व सूक्ष्म जगत्में है और वे लोग ऐसे अवसरोंपर सहायकके रूपमें स्वयं या अपने माध्यमद्वारा किंवा शिष्योंद्वारा जनकल्याण करते रहते हैं।

मैं एकदम घबराकर उन गुरुदेवका ध्यान करने लगा और मुझे आभास हुआ कि कोई अज्ञात शक्ति मुझे ऊपरकी ओर खींच रही है, किंतु घबराहटके कारण मुझे कुछ भी सूझ नहीं रहा था। अन्तमें मैंने उस अव्यक्त शक्तिके अस्तित्वमें दृढ़ श्रद्धा करके पैर जमाकर पुनः ऊपरकी ओर चढ़नेका प्रयत्न किया। मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि तुरंत ही मैं अपने साथियोंमें था, जो मेरे लिये प्रार्थना कर रहे थे।

जैसे भी हम गंगोत्री पहुँचे। स्नानोपरान्त कुछ जलपान किया। डिब्बोंमें जल भर रहे थे कि एक बर्फकी बड़ी चट्टान गिरी और हम सभी अचानक चौंक गये, किंतु उन अव्यक्त महात्माओंकी कृपासे वह चट्टान हमसे एक फुट दूरपर गिरी।

यदि हम पानी भरनेके लिये थोड़ा आगे बढ़ते तो क्या होता इसकी कल्पना करना सहज ही है। इस घटनाके उपरान्त वापस आनेमें हमें सतत उस संरक्षकका आभास मिलता रहा। महात्माकी कुटियापर पहुँचकर हमने गंगा-दशहराके उपलक्ष्यमें प्रसाद पाया। तबसे मेरा विश्वास इन अव्यक्त जगत्के महात्मामण्डलमें दृढ़ हो गया।

—स्वामी योगेश्वरानन्द गिरि, एम्० टी० एस्०

जन्म-जन्मतक कर्जका बन्धन

पाश्चात्त्य सभ्यतासे प्रभावित होनेके कारण चाहे आज पुनर्जन्ममें विश्वास न किया जाय, किंतु आज भी ऐसी अनेक घटनाएँ देखनेमें आती हैं, जो इस विश्वासको बराबर दृढ़ करती रहती हैं।

जूनकी बात है, निश्चित दिन याद नहीं आ रहा है, लेकिन था कोई छुट्टीका दिन ही। मैं गाँव गया हुआ था। जलेसर, एटाके पास ही रेलवे लाइनके किनारे स्थित मेरा गाँव तलैयामें प्रतिबिम्बित बड़ा रमणीक लगता है, आमके वृक्षोंसे घिरी यह तलैया गर्मियोंमें भी कभी नहीं सूखती। आमके इस बागमें प्रायः बालक झुंड-के-झुंड खेलते रहते हैं, यहीं उस दिन एक बालक साँपके काटनेसे बाल-बाल बचा था।

दिनभरकी गपशपके बाद रातको सोनेवाला ही था कि यह खबर बिजलीके करेंटकी तरह गाँवभरमें फैल गयी कि मुखियाके जवान लड़केको साँपने डँस लिया। सभी हाय करके रह गये। ढाक बजना शुरू हुआ, आस-पासके गाँव-गाँवसे लोग इकट्ठे हो गये। अनेक मन्त्रज्ञाता और सर्पको जगानेवाले ओझा बुलाये गये। रातभर ढाक बजनेके बाद सबेरेके समय उस लड़केके विषका प्रभाव कम हुआ। वह झूमने लगा, तब कहीं हम सब लोगोंके चेहरोंपर कुछ रौनक-सी आयी। ढाक बजानेवालोंके दम-में-दम आया अपनी यह आंशिक सफलता देखकर।

वह बक्करा और बोला—'मैंने इसका कुछ नहीं बिगाड़ा था, तो भी इसने मेरे पीछेसे लाठी मारी। मैं बचकर भाग गया और

रातको मौका पाकर मैंने इससे बदला ले लिया।'

तब ढाक बजानेवालोंने प्रश्न किया—'तुम उस अबोध बालकके सामने क्यों बैठे थे, जो रेतमें बैठा खेल रहा था। उसे बचानेको ही ऐसा किया गया; क्योंकि वह तुम्हारे फनके ऊपर रेत डाल रहा था। डर था कि तुम उसे डँस लेते।' तब उत्तर मिला कि 'बात ऐसी नहीं थी, पिछले जन्ममें वह एक साहूकार था और मैं उसका किसान था। मैंने सौ रुपयेका कर्ज लिया था जो न चुका पाया, उसीके लिये मैं माँफी माँग रहा था कि जब इंसानका जन्म मिलेगा तो मैं चुका दूँगा। बीचमें इस मुखियाके लड़केने विघ्न डाला; इसलिये मैंने इसको डँसा। अब इसे यही दण्ड है कि यह सौ रुपये उस बालकके बापको दे दे तो जहर उतर जायगा।' ऐसा ही किया गया तब लड़का विषमुक्त हो गया।

कितना विचित्र विधान है। भगवान् करें—कर्ज लेना ही न पड़े और लिया जाय तो यहीं चुक भी जाय।

—मदनमोहन 'उपेन्द्र', साहित्याचार्य, विद्यावाचस्पति

जब भगवान्‌ने मार्ग-प्रदर्शन किया

घटना मई १९६० की है। गरमीकी छुट्टी हो गयी थी और मैं अपने पिताजी, माताजी एवं ताऊजीके साथ ऋषिकेश गया हुआ था। ताऊजी लगभग पंद्रह वर्षोंसे नेत्रविहीन हैं, परंतु तीर्थाटन करनेकी इच्छा होनेके कारण वे भी हमलोगोंके साथ गये थे। ऋषिकेशमें लगभग पंद्रह दिन रहनेके बाद हमलोग घरके लिये लौट पड़े। लौटते समय यह निश्चित हुआ कि तीन या चार दिन हरिद्वारमें भी रहा जाय। हरिद्वार पहुँचकर स्टेशनसे बाहर पासवाली धर्मशालामें ही हमलोगोंने एक कमरा ले लिया और उसमें अपना सामान आदि रख दिया।

दूसरे दिन सबेरे आठ बजे हमलोग मंसादेवीके दर्शनार्थ चल दिये। देवीजीका मन्दिर पहाड़पर काफी ऊँचाईपर स्थित है और वहाँतक पहुँचनेके लिये जो रास्ते बनाये गये हैं उनपर नेत्रविहीन ताऊजीका चलना सुलभ न था, अतः ताऊजीको हमलोग धर्मशालामें ही छोड़ आये थे।

मंसादेवीके मन्दिरतक पहुँचते रास्तेमें हमलोगोंको एक परिवार और मिल गया। वे लोग भी देवीजीके दर्शन करने जा रहे थे। यात्रामें दो व्यक्ति जब मिलते हैं तो वे बहुत जल्द एक-दूसरेसे परिचित हो जाते हैं, यही हाल यहाँ हुआ। हम सब लोग परस्पर बातें करते मन्दिरतक पहुँचे और सबने देवीजीके दर्शन किये।

लौटते समय हम दोनों परिवार साथ-साथ ही लौटे। रास्तेमें विचार हुआ कि सूरजकुण्डके, जो मन्दिरसे अधिक दूर नहीं है,

भी दर्शन कर लिये जायँ। विचारानुसार हमलोगोंने सूरजकुण्ड देखा और कुछ क्षण रुकनेके बाद वहाँसे लौट पड़े। थोड़ी दूरतक हमलोग परस्पर बातें करते चलते रहे, पर थोड़ी ही देर बाद पता चला कि हमलोग रास्ता भूल गये हैं। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ थे और बीचमें थी गहरी घाटी। शहरकी झलक भी हमलोगोंको नहीं दिखायी पड़ रही थी। दोपहरी निकट आती जा रही थी और धूप बढ़ती और तेज होती जा रही थी। प्यास अलग अपना प्रभाव दिखा रही थी। अब इसके सिवा कोई चारा न था कि अधिक ऊँचाईपर चढ़कर देखा जाय कि शहर किस ओर है और नीचे उतरनेका रास्ता किधरसे होकर जाता है। मन मारकर सब लोग टेढ़े-मेढ़े रास्तोंसे होते हुए ऊपरकी ओर बढ़ने लगे। थोड़ी दूरतक जानेके बाद आगेका मार्ग बंद हो गया, जिससे हमलोगोंकी परेशानी और बढ़ गयी। हमलोग फिर धीरे-धीरे इसी मार्गसे वापस लौटने लगे। वापस लौटनेपर एक और मुसीबत आ खड़ी हुई। एक स्थानपर आकर रास्ता दो भागोंमें बँट गया था। हमलोगोंको घबराहटमें यह भी ध्यान न रहा कि हमलोग किस रास्तेसे आये थे। सब लोग विचार-विमर्श करने लगे कि किस रास्तेपर चला जाय। मेरी तो प्यासके मारे जैसे जान ही निकली जा रही थी। दूसरे परिवारके साथ आये दो बच्चोंका भी यही हाल था। धूप इतनी तेज थी कि खोपड़ी तवे-सी तप रही थी और मालूम हो रहा था कि यदि आधे घंटेतक यही हाल रहा तो हमलोग चक्कर खाकर गिर पड़ेंगे।

मैंने उस संकटकालमें एकमात्र सहायक दीनबन्धु भगवान्‌का आर्तभावसे स्मरण करना शुरू कर दिया और इसका बड़ा ही आश्चर्यजनक फल हुआ।

बाबाको धन्यवाद दे आगे चल पड़े। दो ही पग चलनेपर माताजीने कुछ सोचा और थैलेमेंसे कुछ फल निकालकर, जो हमलोगोंने ऊपर चढ़ते समय ले लिये थे, बाबाको देनेके लिये वे पीछे मुड़ीं। तुरंत ही उन्होंने हम सबको रोक लिया और सबने आश्चर्यसे देखा कि बाबाजीका कहीं पता नहीं है। हमलोग फिर उस स्थानतक आये, पर बहुत खोजनेपर भी वे कहीं दिखायी न पड़े। आखिर इतनी जल्दी बाबाजी चले कहाँ गये?

हमलोग मनमें तरह-तरहकी धारणाएँ बनाते हुए आगे बढ़े। बाबाजीके कथनानुसार हमलोगोंको पीनेयोग्य पानी भी मिल गया।

धर्मशालामें आकर जब मैंने ताऊजीको उक्त घटना सुनायी तो वे गद्‌गद होकर बोले—'धन्य हो बेटा तुम! जो इस उम्रमें ही बूढ़ेके रूपमें तुम्हें भगवान्‌के दर्शन हो गये।'

—कृष्णकुमार वैश्य

होटलमें अद्भुत ईमानदार

दिसम्बरकी बात है। मैं बंदूकके कुंदे सप्लाईका काम करता हूँ। कुंदेके बिलके रुपये गौहाटी सेंट्रल वर्कशापसे मिलते हैं, मैं रुपये लेने गौहाटी गया था। वहाँसे मैं २८,००० (अट्ठाईस हजार) रुपये लेकर अपनी जीपद्वारा घरको रवाना हुआ। रुपये तीन पार्टियोंके थे। चलते समय मनमें आया कि रात हो गयी है, आठ बजे हैं, यहाँ होटलमें भोजन करके ही चला जाय। तदनुसार मैंने श्रीपरमानन्दजी शर्माके दुर्गा-जलपान, उल्लूबाड़ी, गौहाटीमें जाकर भोजन किया। रुपये बैगमें थे। भोजन करके मैं जीपपर सवार होकर चल दिया। लगभग चार मील आनेपर मुझे बैगकी याद आयी। देखा और सोचा कि बैग होटलमें ही रह गयी है। मैं वापस आया, जीप होटलके सामने रुकी। उसके रुकते ही होटलके मालिक श्रीपरमानन्दजी शर्मा बैग हाथमें लिये मेरे पास आये और बोले—'भाई साहब! आप चिन्तित मालूम पड़ते हैं आपकी यह बैग, सँभालिये। देखिये, सही हालतमें तो है न?' मैं यों सहज ही बैगको सही-सलामत पाकर दंग रह गया। मानो ईमानदारी, सचाई और त्यागकी मूर्तिमान् सजीव प्रतिमाके रूपमें श्रीपरमानन्दजी मुझे प्रबोध दे रहे हैं।

आजके इस अर्थलोलुपताके युगमें, फिर होटलमें ऐसे व्यक्तियोंके दर्शन बड़े दुर्लभ होते हैं। मैं भगवान्‌से प्रार्थना करता हूँ, श्रीपरमानन्दजीका यह आदर्श सभीके लिये अनुकरणीय और कल्याणकारी हो।

—हेमराज अग्रवाल, रवत्री, गौहाटी (असम)

ईमानके आगे पैसेका कोई मूल्य नहीं!

भारत-प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्राचीन कलापूर्ण मन्दिरोंकी नगरी ऊनमें श्रीफकीरचन्दजी वर्मा रहते हैं। ये आजसे कई वर्षों पूर्व कार्यवश खरगौन गये थे। वहाँसे वापस ऊन लौटते समय मोटर न मिलनेसे पैदल ही आ रहे थे। मार्गमें 'कसार बावड़ी' मिलती है, उसमें पानी पीनेके लिये गये। पानी पीते समय देखा कि सीढ़ीपर एक पाकेट रखा हुआ है। उस पाकेटको उठाकर आप सड़कपर आकर एक घंटेतक बैठे रहे और पाकेटवालेकी प्रतीक्षा करते रहे। परंतु जब कोई नहीं आया, तब आपने उस पाकेटको खोलकर देखा तो उसमें एक बिल था। बिलपर श्रीभुक्कण भाई पाटीदार, ग्राम बनीहार लिखा हुआ था। बस, इतना ही देखकर आपने पाकेटको बंद कर लिया और तेजीसे चले। ग्राम बनीहारकी इमलीके पास श्रीभुक्कण भाई पाटीदार, जो खरगौन मंडीमें मूँगफली बेचकर अपनी बैलगाड़ीसे वापस बनीहार जा रहे थे, मिल गये। आपने उनको एकदम गाड़ी खड़ी रखनेको कहा। श्रीभुक्कण भाईने गाड़ी खड़ी रखी। तब पास आकर श्रीवर्माने कहा कि 'इस वर्ष मुझे आमका व्यापार करनेके लिये तीन सौ रुपयेकी जरूरत है, आप दे देंगे तो बड़ी कृपा होगी।'

तब श्रीभुक्कण भाईने कहा कि 'घर चलो, रुपये दे दूँगा।' श्रीवर्मा उनके साथ घर गये। श्रीभुक्कण भाईने रुपये देनेके लिये जेबमें हाथ डाला तो पाकेट गायब था। तब तो उनके होश उड़ गये। उन्होंने श्रीवर्मासे कहा कि 'भाई! अभी खरगौनसे आते समय मैं कसार बावड़ीमें पानी पीनेके लिये गया था। वहाँपर

पानीमें कहीं गिर न जाय इस विचारसे पाकेट जेबसे निकालकर मैंने सीढ़ीपर धर दिया था। पानी पीकर पाकेट उठाना भूल गया हूँ। इससे वह पाकेट वहीं रह गया है। अभी जाकर लाता हूँ। भाग्यमें होगा तो मिल जायगा और मिल गया तो तुमको व्यापारके लिये रुपये जरूर दे दूँगा।' अधिक चिन्तातुर देखकर श्रीवर्माने पाकेट निकालकर उनके सामने धर दिया और कहा कि 'इसमें आपके नामका बिल होनेसे मैं इसे ले आया हूँ। रुपये कितने हैं, मैं नहीं जानता, आप गिनकर अपनी रकम अच्छी तरह मिला लें।' तब श्रीभुक्कण भाई पाटीदारने पाकेट लेकर देखा तो उसमें पूरे पाँच सौके नोट सही-सलामत निकले। पूरी रकम देखकर उनको बहुत ही प्रसन्नता हुई। उन्होंने श्रीवर्माको बहुत ही स्नेहसे उस दिन अपने घर ही रखा और प्रातः अपनी बैलगाड़ीसे ऊन पहुँचाने आये। ऊन पहुँचाकर आपने बहुत ही अहसान माना। तब श्रीवर्माने विनम्रभावसे कहा कि 'इसमें अहसानकी तो कोई बात ही नहीं है। ईमानके आगे पैसेका कोई मूल्य नहीं है।' तबसे वर्माको केवल श्रीभुक्कण भाई पाटीदार ही नहीं, वरं सारे ग्रामकी जनता श्रद्धासे देखती है।

—विष्णुराम सनावद्या 'सुमनाकर'

पतिव्रता देवीका बुद्धिमत्तापूर्ण आदर्श साहस और त्याग

इन त्यागमयी बुद्धिमती सती वीरांगनाका नाम था सुश्री शान्तिदेवी। इनके पिता लाला श्रीरेवतीप्रसादजी अग्रवाल, कस्बा खानपुर, जिला बुलन्दशहरके एक सम्मानित व्यवसायी हैं। आपके भाई लखनऊमें व्यवसाय करते हैं। आपका विवाह बुलन्दशहर जिलेके औरंगाबाद स्थानके लाला श्रीबाबूरामजीके सुपुत्र श्रीजगदीशप्रसादजी एम्० ए०, एल्० टी० महोदयके साथ हुआ था।

श्रीजगदीशप्रसादजी कस्बा खानपुरके माध्यमिक विद्यालयमें प्रधानाचार्यके पदपर कार्य करते थे। किसी स्वार्थभरे कारणसे कुछ लोग इनसे विरोध करने लगे। एक बार श्रीजगदीशप्रसादजी सपत्नीक बैलगाड़ीद्वारा अपने निवासस्थान औरंगाबादसे खानपुरको जा रहे थे। मार्गमें कुछ लोगोंने गाड़ी रोककर प्रधानाचार्यजीपर लाठियोंसे प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। श्रीमती शान्तिदेवी अपने पतिके ऊपर लेट गयीं। उन लोगोंने कहा—'बहनजी! आप अलग हो जाइये हमारा वैर तो इन प्रिंसिपल साहबसे है।' इसपर श्रीमती शान्तिदेवीने उनको फटकारते हुए कहा—'नराधमो! लज्जा नहीं आती, मुझको बहन भी कहते हो और उस बहनके ही जीवन-सर्वस्व एवं इष्टदेवपर प्रहार करनेको तुले हो? जबतक मुझे मार न डालोगे, तुम इनके शरीरको छू भी नहीं सकते।' उनके इस उत्तरने उनको निरुत्तर कर दिया और वे तुरंत वहाँसे चले गये। इस प्रकार वीरांगनाने पतिके प्राणोंकी रक्षा की।

कुछ दिन बाद दो फरवरी सन् १९५९ को एक बहुत बड़ी

अद्‌भुत घटना हुई, जिसने श्रीमती शान्तिदेवीको चिरस्मरणीय बना दिया। उस घटनासे यह पूर्णरूपसे प्रकट हो गया कि 'ये देवी कितनी प्रत्युत्पन्नमति, त्यागमयी, साहसमयी, पतिव्रता एवं ईश्वरनिष्ठ थीं। रात्रिके समय लगभग पचीस-तीस शस्त्रधारी व्यक्तियोंने प्रधानाचार्य महोदयके निवासस्थानपर छापा मारा। प्रधानाचार्यजी खानपुरके माध्यमिक विद्यालयमें ही ऊपर रहते थे। विद्यालयमें उस समय दो-तीन चपरासी तथा तीन अध्यापक थे। गिरोहके व्यक्तियोंने आते ही चपरासी तथा अध्यापकोंको डरा-धमकाकर आतंकित कर दिया कि जो जहाँ है वहीं पड़ा रहे, अन्यथा प्राणोंसे हाथ धोने पड़ेंगे। इसके पश्चात् वे लोग सीढ़ियोंके द्वारा ऊपर गये और प्रधानाचार्य महोदयके कमरेके किवाड़ खटखटाने लगे। पूछनेपर बताया कि हम आपको मारने आये हैं।'

प्रधानाचार्य महोदयने कहा—'यह तो कायरपन है कि आप इतने लोग मिलकर एक निहत्थे व्यक्तिको मारने आये हैं। मैंने तो ऐसा कोई बुरा काम भी नहीं किया है। अच्छा मैं किवाड़ खोलता हूँ और यह सीना आपके सम्मुख है। आप गोली मार सकते हैं।'

उनकी पत्नी शान्तिदेवीने उनको कुछ रुकनेके लिये कहा और जो नये-पुराने कपड़े मिले, उनको तुरंत मिट्टीके तेलमें भिगो लिया। अब किवाड़ खोलनेको कहा। किवाड़का खुलना था कि दो व्यक्तियोंने एक ही साथ दो फायर प्रधानाचार्य महोदयपर किये। भगवान्‌का विधान, दोनों ही गोलियाँ उनके बगलसे निकल गयीं। अब एक फायर पिस्तौलद्वारा करनेका प्रयत्न किया, परंतु पिस्तौल चली नहीं। प्रधानाचार्य महोदय अचेत होकर गिर पड़े। उनकी बुद्धिमती साहसमूर्ति पत्नीने तेलसे

भीगे कपड़े जला-जलाकर इस तेजीसे डाकुओंपर फेंकने प्रारम्भ किये कि उन्हें भागते ही बना। इस बीचमें प्रधानाचार्यको चेत हो गया था। शान्तिदेवीने अपने पतिको पीछे हटा दिया और दृढ़तापूर्वक उनको आगे बढ़नेसे तथा बोलनेसे रोक दिया। प्रधानाचार्य महोदयका कथन है कि 'ऐसा अपूर्व तेज मैंने अपनी पत्नीमें इससे पहले कभी नहीं देखा था और इस समय मैं उनका आदेश माननेको बाध्य हो गया।' वह भागते हुए डाकुओंपर और भी द्रुतगतिसे जलते कपड़े फेंकने लगीं। डाकू बिलकुल घबरा गये और बोले कि 'यह स्त्री साधारण नहीं है—साक्षात् दुर्गा है। यह तो हमलोगोंको भस्म ही कर देगी।' वे लोग वहाँसे भाग गये और जबतक गाँवके चार-पाँच सौ मनुष्य आयें, एक भी डाकू वहाँपर नहीं थे। अर्द्धरात्रिके समय सन्नाटेमें नगरसे बहुत दूर तीस-पैंतीस सशस्त्र निर्मम डाकुओंका केवल अपनी सूझ-बूझके तथा साहसके बलपर भगवान्‌के सहारे एक निहत्थी अबलाद्वारा सामना किया जाना तथा उन्हें वहाँसे भागनेपर विवश कर देना साधारण बात नहीं है। यह उस देवीके आदर्श पति-प्रेम, सूझ और साहसका परिचायक है। वह सच्ची सती थी और इसी कारण उसमें वह तेज प्रकट हुआ।

परंतु यह त्याग सहसा लोकदृष्टिमें हो गया दुःखान्त। यद्यपि उस देवीके लिये तो यह गौरवकी चीज हुई। उसका समर्पण-यज्ञ पूर्ण हो गया। बात यह हुई कि डाकुओंपर कपड़े फेंकते समय तेलके छींटे उनके ऊपर भी पड़ गये थे और वे जब लौट रही थीं, उनकी साड़ीमें आग लग गयी। आग जोर पकड़ गयी। उनके स्वामी तथा दशवर्षीय पुत्रने आग बुझानेका बहुत प्रयत्न किया, उन लोगोंके हाथ जल भी गये और किसी तरह आग

बुझी; परन्तु उस समयतक वे बुरी तरह झुलस गयी थीं। मोटरद्वारा उन्हें बुलन्दशहर अस्पतालमें पहुँचाया गया। इतनी जली होनेपर भी उन्होंने किसीका सहारा लेना पसंद नहीं किया और स्वयं मोटरपर जा बैठीं। उनका शरीर इतना जल गया था कि कहींपर इन्जेक्शनतक नहीं लगाया जा सकता था। बड़ी तत्परतासे उपचार किया गया, परन्तु उस सतीको इस नश्वर संसारमें रोका नहीं जा सका। जलनेके पचास घंटे पश्चात् वे इस नश्वर शरीरका त्याग करके दिव्यलोकको चली गयीं।

अन्त समयतक उनकी पतिभक्ति और ईश्वर-निष्ठा उनमें दीप्तिमान् रही। मृत्युशय्यासे भी वे अपने पतिकी ही ओर देखती रहीं तथा उन्हींको अपने पास उन्होंने बैठने दिया। मृत्युके नौ घंटे पूर्वसे रामायणका मौखिक पाठ प्रारम्भ किया जो अन्त समयतक चलता रहा। प्रत्येक दोहेके अन्तपर वे **'सियावर रामचन्द्रकी जय शरणम्। सियावर रामचन्द्र पतिपद शरणम्'** का घोष करती थीं। इसी अवस्थामें ब्राह्ममुहूर्तमें प्रातःकाल पाँच बजे उनकी अमर आत्माने इस नश्वर शरीरको त्याग दिया। बहुत सम्मानके साथ उनकी अर्थी निकाली गयी, जिसमें हजारों व्यक्तियोंने भाग लिया। नगरके अनेक सम्मानित व्यक्तियोंने मृतात्माको श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। ऐसी देवियाँ ही भारतकी परम गौरवमयी सांस्कृतिक परम सम्पत्ति हैं।

—रघुवरदयाल गोयल

नमककी महिमा

यह उन दिनोंकी बात है, जब उत्तर भारतमें जहाँ-तहाँ रेलवे लाइनें बन चुकी थीं और कई जगहोंपर बन रही थीं, पर बेतिया (चम्पारन)-से सीवान (सारन)-तक अभी भी कोई सीधी लाइन नहीं है. ऐसे तो मुजफ्फरपुर होकर बेतिया जाया जा सकता है, लेकिन उन दिनोंमें सीवानसे बेतिया जानेके लिये केवल स्थल-मार्ग था और वह भी गंडकी नदी पार करके जाना होता था।

मेरे पितामह गाड़ा बेचने प्राय: बेतिया जाया करते थे। उन दिनों रुपयेके नोट नहीं छपते थे, केवल रुपयेके सिक्के चलते थे, जिनको व्यापारी लोग डोड़ों—न्यौलीमें (जो एक प्रकार पतली और लंबी कपड़ेकी थैली होती है) रुपये रखकर और उसे अपने कमरमें बाँधकर तथा ऊपरसे धोती आदिसे ढककर एक जगहसे दूसरी जगह चलते थे। मेरे पितामह भी उसी प्रकार डोड़ों (न्यौली)-में रुपये रखकर और उसको कमरमें बाँधकर बेतियासे सीवान आ रहे थे।

बेतियामें एक चोरको इस बातका भेद मालूम हो गया कि मेरे पितामहके पास पूरा रुपया है जो कमरमें बाँधकर ले जा रहे हैं। वह रास्तेमें चोरी करनेके विचारसे मेरे पितामहके साथ व्यापारीका भेष बनाकर लग गया। जल्दीमें जो साथ लगा तो अपने साथ रास्तेमें खानेके लिये कुछ सत्तू रख लिया और मेरे पितामहके पीछे-पीछे चल पड़ा। मेरे पितामहको उस रास्ते बराबर आना-जाना पड़ता था, रास्तेकी स्थितिकी पूरी जानकारी थी। अतएव वे अपने साथ खानेके लिये सत्तू आदिके साथ

नमक, मिर्च, खटाई, चटनी, अचार आदि थोड़ी-थोड़ी मात्रामें रखे रहते थे और जहाँ जैसा मौका होता उससे काम चलाते थे।

रास्तेमें एक स्थानपर, जहाँ एक कुँआ और कुछ पेड़ थे; मेरे पितामह ठहर गये और वहीं भोजन आदिकी व्यवस्था करने लगे। कुछ देर आराम करनेके बाद उन्होंने अपनी झोलीसे सत्तू निकाला और सत्तूमें नमक मिलाकर और पानीसे सानकर चटनी, खटाई आदिसे खानेके लिये बैठ गये। चोर भी जो पीछे-पीछे लगा था, वहीं उनको रुका देखकर रुक गया और उसने भी अपनी झोलीसे सत्तू निकाला, लेकिन उसके पास सत्तूके साथ खानेके लिये नमक, मिर्च, खटाई आदि नहीं थे। खानेका समय हो गया था और उस निर्जन स्थानपर ये सब आवश्यक वस्तुएँ मिल जायँ, ऐसी सुविधा नहीं थी। वह चोर चिन्तित-सा था। मेरे पितामह समझ गये कि इस व्यक्तिके पास सत्तू खानेका आवश्यक साधन नहीं है और इसी उधेड़-बुनमें वह पड़ा है, अतएव बिना उसके माँगे पितामहने अपने पाससे आवश्यक सामान नमक, अचार, चटनी आदि उसको सत्तू खानेके लिये दे दिये। पहले तो वह इनकार करता रहा; लेकिन मेरे पितामहके आग्रह और वहाँ दूसरी व्यवस्था उपलब्ध न होनेके कारण उसने उन आवश्यक सामानोंको ले लिया और अपना सत्तू खाया।

भोजन समाप्त होनेके पश्चात् जब पुनः आगे प्रस्थान करनेके लिये मेरे पितामह तैयार हुए तो वह व्यक्ति मेरे पितामहके सामने हाथ जोड़कर क्षमा माँगने लगा और बोला कि 'मैं व्यापारी नहीं हूँ, बल्कि आपके रुपयोंको चुरानेके लिये साथ लगा हुआ चोर हूँ; लेकिन आपने मुझे अपना नमक खिला दिया, इसलिये मेरा धर्म अब कुछ दूसरा हो गया। अब मैं आपके रुपयोंकी चोरीका

सब लोग विचार-विमर्श कर ही रहे थे कि हमलोगोंको अकस्मात् एक आवाज सुनायी पड़ी—'जान पड़ता है कि आपलोग रास्ता भूल गये हैं ?'

हमलोगोंने यह जाननेकी कोशिश की कि आवाज किधरसे आ रही है। सब लोग अभी इस बारेमें सोच ही रहे थे कि पुनः आवाज आयी—'आपलोग इधर आइये।'

हमलोग अनुमानसे एक रास्तेपर बढ़े। दो ही पग चलनेपर हमलोगोंने देखा कि एक बहुत ही बूढ़ा व्यक्ति केवल एक लुंगी पहने, पहाड़की तपती हुई नंगी छातीपर बिना कुछ बिछाये बैठा है। मुझे आश्चर्य हुआ कि वह आदमी तपती हुई भूमिपर बैठा कैसे है?

उसके पास पहुँचकर सब रुक रहे और मैंने उससे पूछ ही लिया—'बाबा! तुम यहाँ क्या करते हो?'

'भीख माँगता हूँ बेटा' उसका उत्तर था।

'यहाँ तुम्हें भीख कौन देता होगा बाबा?' मुझे आश्चर्य हुआ और आश्चर्यकी बात ही थी।

'देखिये, आपलोग इस रास्तेपर चले जाइये।' मेरी बातको अनसुनी करके उसने एक ओर संकेत करते हुए कहा—'थोड़ी दूर चलनेपर आपलोगोंको नीचे उतरनेका मार्ग मिल जायगा।'

हमलोग चलनेको हुए, तभी वे बुड्ढे बाबा फिर बोले—'धूप बड़ी तेज है और आपलोगोंको प्यास जरूर लगी होगी।'

'हाँ बाबा!' सबने एक स्वरसे कहा।

'तो परेशान मत होइये, आगे चलनेपर रास्तेमें एक मन्दिर मिलेगा जहाँ आपलोगोंको पीनेयोग्य पानी मिल जायगा।'

यह सुनकर सबमें एक नयी स्फूर्ति आ गयी और सब

इरादा छोड़कर बेतिया वापस जाता हूँ।'

मेरे पितामहको उसकी बातें सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उनके मनमें यह भाव आया कि जब इसके मनमें इस प्रकार धर्मभाव है तो जरूर किसी विवशतावश ही यह चोरी आदि कुकर्म करनेका घृणित विचार अपने मनमें लाया है, इसलिये इसके विषयमें कुछ जानकारी प्राप्त करनी चाहिये और इसके चरित्रको सुधारना चाहिये। मेरे पितामह आग्रह करके उस व्यक्तिको अपने साथ सीवान ले आये और कुछ दिनोंतक अपने यहाँ रखकर उससे व्यापार करनेका वचन लिया और बादमें उसको अपनी ओरसे कपड़ा देकर बेतियामें दूकानदारी करा दी। बहुत दिनोंतक वह व्यक्ति बेतियामें अपनी दूकान करता था और मेरे पितामहसे व्यापारिक सम्बन्ध रखता था। इस प्रकार थोड़े-से उत्तम विचारने उसको गिरनेसे बचा दिया।

—रामकृष्णप्रसाद

राज्य बदला है, अन्तरात्मा नहीं बदली

फ्रांस क्रान्तियोंका देश है। १८३० में वहाँ चार्ल्स दशमके राज्यके विरुद्ध प्रजाने प्रचण्ड विद्रोह किया। तीन दिनके भीतर ही चार्ल्स दशमको राजसिंहासन छोड़ना पड़ा; परंतु इस विद्रोहमें एक बात देखनेमें आयी—विद्रोहियोंकी ईमानदारी और निर्लोभता। विद्रोही सरदारोंका एक लोकप्रिय नारा था, 'हम विजयके लिये निकले हैं। डाके डालनेके लिये नहीं।' जहाँ कुछ लोगोंने गड़बड़ की, वहीं उनके साथियोंने उन्हें कठोर दण्ड दिया। विद्रोहसे घबराकर डचेज ऑफ बेरी भाग गयी थी। उसके घरमें दो मिस्त्रियोंको सोनेसे भरा हुआ काँसेका एक संदूक मिला। उसे उठाकर उन्होंने विद्रोहियोंके कोषमें जमा कर दिया और इतनी जल्दी चलते बने कि उनके नामका भी आजतक पता नहीं चला। एक विद्रोही सरदारके यह कहनेपर कि देखना यहाँसे कोई चीज उठने न पाये। एक सामान्य नागरिकने उत्तर दिया, 'सरदार! हमने राज्य बदला है, अन्तरात्मा नहीं बदली।'

—राजेन्द्रप्रसाद जैन

रुद्राक्षका तथा आँवलेका प्रयोग कैसे किया जाय?

उच्च रक्तचापकी बीमारी शरीरमें रक्तके आधिक्य अथवा कमीके कारण होती है। शरीरमें रक्तकी गति जाननेके लिये जितनी आयु हो उसमें ९० जोड़ देनेसे निकल आती है। जैसे मेरी आयु इस समय ७० वर्षकी है तो ७० में ९० जोड़ देनेसे १६० रक्तचाप होना आवश्यक है।

रक्तचाप दो तरहका होता है। एकमें यह गति अधिक हो जाती है और दूसरेमें कम। मेरा रक्तचाप १६० की जगह २३३ हो गया था। यह उतरकर फिर १६० हो गया। बढ़े हुए रक्तचापकी दवा 'सर्पगन्धा' नामक जड़ी है, जिसकी गोलियाँ बाजारमें मिल सकती हैं।

मुझे इनके सेवनसे बहुत लाभ हुआ। पर दूसरे तरहका रक्तचाप ऐसा होता है कि रक्तकी गति साधारणसे मन्दतर हो जाती है, अर्थात् जैसे मेरे रक्तचापमें १६० के स्थानमें १२० हो जाय। इसकी दवा जटामाँसी नामक जड़ी है । रक्तचाप गड़बड़ होनेपर नमक बिलकुल ही छोड़ देना चाहिये। आटेकी सूखी रोटी तथा हलकी तरकारी लौकी इत्यादि दोपहरको सेवन करना चाहिये। मैं दिनमें केवल एक ही बार एक रोटी, लौकी तथा पालकका साग खाता। रातको थोड़ा-सा (गायका, भैंसका नहीं) केवल दूध लेता था। भैंसके दूधमें बहुत वायु होती है। इसका सेवन नहीं करना चाहिये।

उसी लेखमें मैंने आँवलेसे सिर मलनेके बारेमें भी लिखा है। बाजारमें सूखा आँवला छः-सात आने (लगभग ४०-४५ पैसे)-का सेर (लगभग १ किलोग्राम)-भर किसी पंसारीके यहाँ मिल सकता है। सेरभर आँवला प्राय: कई दिनोंतक चल सकता है।

उपर्युक्त ओषधियाँ तो हैं ही पर एक और बहुत ही अच्छी ओषधि रक्तचापके लिये है। मैंने एक अंग्रेजी लेखमें पढ़ा था। यह रुद्राक्ष-धारण है। शुद्ध रुद्राक्ष प्राय: काशीमें मिल जाता है और दाम भी अधिक नहीं लगता। रुद्राक्षको ऐसे धारण करना चाहिये कि वह बराबर शरीरसे लगा रहे। रुद्राक्ष एकसे लेकर बारहमुखीतक होते हैं। मैंने जो रुद्राक्ष धारण किया, वह छ:मुखी है। उसका नाम कालाग्निरुद्र है। इससे मुझे तो सदा लाभ हुआ।*

प्राय: चार वर्ष हुए रक्तचाप फिर नहीं हुआ। हृदयके विविध रोगोंमें भी इस शुद्ध रुद्राक्षको घिसकर ओषधिके रूपमें भी लेते हैं। अत: बड़ेसे ही काम लेना चाहिये। रुद्राक्ष Endonesia (जावा इत्यादि टापू)-में ही होता है और वहाँसे भारतमें आयात किया जाता है।

उपर्युक्त रोगके अतिरिक्त सिरके रोगोंमें आँवलेका प्रयोग विशेष लाभदायक है, जिसकी सेवन-विधि इस प्रकार है—

---

* मेरे एक सम्मान्य महानुभावने बतलाया था कि असली रुद्राक्षकी माला गलेमें सदा पहने रखनी चाहिये, जिससे उसका स्पर्श हृदयसे होता रहे। इससे बढ़े हुए रक्तचापका रोग मिट जाता है। 'इंडियन एक्सप्रेस' के एक गतांकमें एक सज्जन लिखते हैं कि 'असली रुद्राक्षके दो-चार दाने एक या दो आउंस जलमें डुबोकर रख दें और रातभर पड़ा रहने दें। सबेरे खाली पेट उस पानीको पी लें। इससे बढ़े हुए रक्तचापका रोग नष्ट हो जाता है। यह प्रयोग ६० से ९० दिनोंतक करना चाहिये। इसके अतिरिक्त रुद्राक्षके दानेको गौके दूधमें पीसकर प्रात:काल खाली पेट उसका सेवन करनेसे चेचक बहुत जल्दी मिट जाता है। रुद्राक्षका प्रयोग चेचकको रोकता भी है।

—सम्पादक

आँवला एक काठ, मिट्टी अथवा शीशेके बर्तनमें रातको भिगो देना चाहिये। सबेरे उसमेंसे गुठली निकालकर अलग फेंक देना चाहिये और आँवलेको चन्दनकी तरह घिसकर लगा लेना चाहिये। दस मिनटके बाद पानीसे अच्छी तरह स्नान कर लेना चाहिये। गरमीमें तो यह विशेषरूपसे ठंडक देता है। आँवला रसायन कहा जाता है और पारेका नाम रस है। इसके सेवनसे बाल सफेद नहीं होते तथा मनुष्य प्रायः चिरकालतक युवा बना रहता है।

वैसे आँवला लगानेपर सेंट (Scent)-वाला तेल नहीं लगाना चाहिये। मैं तो सिर्फ कड़ुआ तेल ही लगाता हूँ। आँवलेसे सिर मलनेके लिये कोई यह नियम नहीं है कि बराबर ही लगाता रहे। यदि जाड़ेमें ठंडक मालूम दे तो बंद भी किया जा सकता है।

—भगवतीप्रसाद सिंह,

१७ वी० मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद

हृदय-परिवर्तन

बात मेरे एक अत्यन्त निकटतम सम्बन्धीके लड़केकी है या यों कहिये, मेरे ही लड़केकी है और विभाजनसे कोई तीन-चार वर्ष पहलेकी है। उन दिनों वे 'तायर' साहिब कहलाते थे, आजकल 'कपूर' साहिब कहलाते हैं।

'तायर' साहिब विवाहित थे और एक बच्चेके पिता भी थे। शिक्षित थे, साहित्यिक थे, समालोचक थे और उर्दूके लेखक एवं पत्रकार भी थे।

फिल्में देखनेका उन्हें शौक ही नहीं था, उनमें काम करनेका भी शौक था। कोई भी फिल्म देखते, उसके एक-दो महत्त्वपूर्ण गाने चट याद कर लेते। कण्ठ अच्छा था। इसलिये सुननेवालेको बड़ा रस आता था।

पंजाबमें फिल्मोंका उत्पादन-केन्द्र उन दिनों लाहौर ही था। इसलिये फिल्म-शिल्पी, फिल्म-विधायक एवं फिल्म-प्रेमी अक्सर लाहौरमें ही जमा रहते थे। 'तायर' साहिब भी लाहौरको ही अपना भाग्यविधाता समझकर प्राय: उसकी शरणमें जाते रहते थे। यह फिल्म-शिल्पियोंसे सम्पर्क पैदा करते रहते थे। उनसे मेल-जोल बढ़ाते रहते थे और तरह-तरहके स्वप्नलोककी सैर करते रहते थे।

ज्यों-ज्यों उनका फिल्मी-प्रेम बढ़ता जाता था, त्यों-त्यों उनका रंग-ढंग बदलता जाता था। घरके वातावरणसे उन्हें घृणा होती जाती थी, बीबी और बच्चेसे प्रेम घटता जाता था। घरमें बैठते तो फिल्म-जगत्की ही चर्चा करते रहते, उसीके गीत गाते रहते।

जहाँतक फिल्म-जगत्की चर्चाका सम्बन्ध था, फिल्म-शिल्पियोंकी आलोचना-समालोचनाका सम्बन्ध था, किसीको आपत्ति न थी।

किसीको डरनेकी जरूरत भी न थी। आपत्ति थी, भय था तो 'तायर' साहिबके बड़ी शीघ्रतासे बदल रहे रंग-ढंगसे, तौर-तरीकोंसे। स्पष्ट दिखायी दे रहा था, आज नहीं तो कल ये अपना सब काम-धंधा छोड़कर, चल-अचल सम्पत्ति बेचकर फिल्म-जगत्‌में जा प्रवेश करेंगे और यहाँसे सैकड़ों कोस दूर बम्बईमें जा बसेंगे। फिर अकेले नहीं, किसीको साथ लेकर, सहचरी बनाकर, जीवन-संगिनी बनाकर। किसीको यह स्थिर नहीं किया जा सकता था। प्रशंसक कितनोंके ही थे, मेल-मिलाप कितनोंसे ही रखते थे।

अब किया जाय तो क्या यह उनकी पत्नी सोच ही रही थी कि एक दिन लाहौरसे 'तायर' साहिबके एक मित्र मुसलमान गीतकार, उनकी अभिनेत्री पत्नी और एक अन्य सज्जन अतिथिरूपमें उनके घर अमृतसर आ गये। पहलेसे स्थिर किये हुए दिन या अकस्मात् कहा नहीं जा सकता।

'तायर' साहिबकी पत्नी सुन चुकी थी कई बार कि ये गीतकार महोदय अपनी वर्तमान पत्नीको छोड़ तो देना चाहते हैं, पर चौराहेपर नहीं, किसी दिल और दौलतवाले व्यक्तिके हाथोंमें हाथ देकर, उसे सौंपकर!

अब 'तायर' साहिबकी स्त्रीने समझा, वह दिल और दौलत-वाला व्यक्ति अगर कोई समझा गया है तो उसका पति। उसे ही सौंपना चाहते हैं। आये हैं घरका वातावरण देखने, रहन-सहन देखने।

यह एक ऐसा विचार था, विश्वास था जो किसी भी नारीके मस्तिष्कका संतुलन खो सकता था, उसे आपेसे बाहर कर सकता था; पर वह जरा भी विचलित न हुई, आपेसे बाहर न हुई, प्रत्युत उसने खुशी प्रकट की। उन्हें देखकर बड़े मीठे शब्दोंमें उसने उनका स्वागत किया। पतिका संकेत पाकर फौरन चाय तैयार कर लायी और फिर खाना तैयार करनेमें लग गयी। मेरी

पत्नी पहलेसे ही चौकेमें बैठी थी।

'तायर' साहिबकी धर्मपत्नी खाना बनाती जाय और रोती जाय। मेरी स्त्रीने सान्त्वना देते हुए कहा—'बेटी ! घबराओ नहीं। कल ही मैं तुम्हारे भाईके पास जाकर सारी बात करूँगी और वह 'तायर' साहिबको समझा लेंगे।' वह बोली—'माताजी! उनके पास जानेकी आवश्यकता नहीं। मेरा मैका भाइयोंका घर है, कलको मुझे ताने-मेहने सुनने पड़ेंगे। मैं खुद ही यदि मुझमें शक्ति होगी, पतिभक्ति होगी, सब ठीक कर लूँगी।'

खाना तैयार हो जानेपर वह दस्तरखानपर ले आयी। सबके साथ मिलकर उसने भी खाया और बातों-बातोंमें उसने गीतकारकी पत्नीकी खूब प्रशंसा की। उसकी अभिनय-कलाको खूब सराहा और उसका भविष्य बहुत उज्ज्वल बतलाया।

खाना समाप्त होनेके थोड़ी देर बाद खुशी-खुशी सब लोग गन्तव्य स्थानको चले गये। समय रातका था। इधर घरके सब लोग भी अपने-अपने स्थानपर जा सोये।

अगले ही दिन 'तायर' साहिबकी धर्मपत्नीने अपने-आपमें क्रान्तिकारी परिवर्तन कर लिया।

एक मध्यम वित्तके कुलीन घरकी सीधी-सादी बहू फिल्म-जगत्‌की शोख हसीना नजर आने लगी। पत्नीकी जगह प्रेम-विह्वल प्रेमिका दिखायी देने लगी।

बात-बातमें हाव-भाव और कटाक्ष, नाजो-अंदाज और नखरा। सबेरे कोई साड़ी, संध्याको कोई। फिर प्रत्येक साड़ीसे मेल खाता बाकी सब सामान। सैंडल, पर्स वगैरह-वगैरह।

पहले बार-बार कहनेपर भी 'तायर' साहिबको जल्दी बिस्तरकी चाय नहीं देती थी और देती थी तो प्याला उनके आगे धरकर वह शौच, स्नान और पूजा-पाठको चली जाती थी।

अब साथ बैठकर पीने लगी।

पहले बार-बार कहनेपर भी कभी मन मारकर सिनेमा देखनेके लिये 'तायर' साहिबके साथ चल पड़ती थी, सैरको राजी हो जाती थी और किसी रेस्टोरेंटमें बैठ जाती थी, पर अब तो रोज ही जोर देकर सैरको चल पड़ती। सैरके बाद या पहले अब किसी साधारण रेस्टोरेंटमें नहीं, अच्छे होटलमें ले चलती। सिनेमा तो कोई छोड़ती ही नहीं और फिर अकेली नहीं 'तायर' साहिबको साथ लेकर।

'तायर' साहिब हुए खूब खुश। उन्हें ऐसा भान होने लगा कि उन्हें नया जन्म, नया संसार मिल गया है। अब वे लाहौरमें जाने और मित्रोंसे मिलनेमें कोई खास दिलचस्पी नहीं रखने लगे। प्रथम तो जायँ ही कम और जायँ तो रात कभी न रहें। मित्र आयें तो उनसे बेरुखी तो कभी न करें, पर पहले-जैसा उत्साह भी न दिखायें।

धीरे-धीरे 'तायर' साहिबकी रुचियों और अभिलाषाओंमें परिवर्तन आते-आते फिल्म-जगत्‌में प्रवेशका विचार तो सर्वथा ही समाप्त हो गया। वे स्वयं अभिनेताओं और अभिनेत्रियोंसे सम्पर्क और मित्रता पैदा करने और बढ़ानेकी आलोचना करने लग गये। सादगी और मितव्ययिताकी ओर भी उनका रुख धीरे-धीरे बढ़ने लगा। तड़क-भड़कवाली शौकीन जिंदगीसे उन्हें कुछ घृणा-सी होने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे अब फिर पहले-जैसा सादा, मर्यादित और प्रशंसात्मक जीवन चाहते हैं, पर जोर-जबरसे नहीं, जीवनसंगिनी भी चाहे तो।

जीवनसंगिनीने देखा, अभिनय सफल हो गया है, पतिदेवके विचार फिर यथापूर्व होने जा रहे हैं, उसने अपने नाटकीय जीवनमें परिवर्तन लाना शुरू कर दिया।

धीरे-धीरे वह फिर पहले-जैसी सादी और सौम्य बनने लग गयी। उसकी चंचल शौकीनी और खर्चीली जिंदगी बदलने लगी। 'तायर' साहिब भी यही चाहते थे; क्योंकि अब उनकी विलासिताकी भूख मिट गयी थी।

अन्ततोगत्वा फिर दोनों उस पुराने जीवनमें, पर तनिक परिवर्द्धित रूपमें आ गये और समयके साथ-साथ चलने लग गये।

'तायर' साहिबकी धर्मपत्नीने बतलाया, पतिको अनुकूल बनानेका तरीका लड़ाई-झगड़ा और लट्ठमलट्ठ नहीं है, इससे तो उलटी तबाही होती है, विनाश होता है और पति हाथसे निकल जाता है। जीवन दूभर और कड़ुवा हो जाता है। एकका नहीं, दोनोंका।

तरीका है, उपाय है, धैर्य, संतोष, प्रेम, मुहब्बत और यथोचित अनुकूलता। साथ ही अपने लक्ष्यपर चट्टानकी तरह दृढ़ रहना, उससे स्वप्नमें भी कभी च्युत न होना। डूबतेको बचाते-बचाते स्वयं न डूब जाना। (नहीं तो इसमें बड़ा खतरा भी है।)

श्रेष्ठ तैराक वही होता है, जो डूबतेको बचाकर किनारेपर ले आता है। जो स्वयं डूब जानेके भयसे डूबतेको बचानेका प्रयत्न नहीं करता या करता-करता स्वयंको खतरेमें समझकर उसे डूबनेके लिये छोड़ आता है, वह श्रेष्ठ तैराक नहीं कहलाता।

'तायर' साहिबकी धर्मपत्नी श्रेष्ठ तैराक थी। उसने पतिको भी बचा लिया और खुदको भी डूबने न दिया। उसीका फल है, यह जोड़ा बहुत सुखी, सम्पन्न और लब्धप्रतिष्ठ है।

—गुराँदित्ता खन्ना

सब वकील ऐसे हों तो ?

विना ही परिश्रम किये धनी होनेका मोह उत्पन्न हुआ और मैंने मेहनतका चालू काम छोड़कर वम्बईके शेयर वाजारमें चक्कर लगाना शुरू कर दिया। वाजारमें शेयरोंके भाव भी आसमानपर चढ़े जा रहे थे। इसी वीच केन्द्र-सरकारके उस समयके अर्थमन्त्री श्रीलियाकत अली खाँका 'गरीवोंका वजट' आ गया। उसका वाजारपर वड़ा असर हुआ और वह वाजारको गरीव वनाता चला गया। मंदीकी सीधी धारा चलने लगी। मैंने अपने पुराने व्यापारमें मेहनत करके जो कुछ कमाया था, वह सव तो खो ही दिया, ऊपरसे शेयर वाजारकी भी वहुत रकम देनी रह गयी। सभी लेनदारोंको 'धीरे-धीरे कमाकर चुका दूँगा'—यों आश्वासन देकर शान्त किया, परंतु एक दलाल भाई किसी तरह भी नहीं माने, मुझसे बहुत अच्छी कमाई उन्होंने की थी तो भी केवल चौदह सौ रुपयोंके लिये उन्होंने कोर्टमें मुझपर नालिश कर दी। इसके लिये उन्होंने एक वकील भाईको नियुक्त किया।

मेरे पास दलीलके लिये तो कुछ था ही नहीं, समय बितानेके लिये मेरे वकीलने वादीके बहीखाते जाँचनेकी माँग की और अदालतने उसे मंजूर करके लंबे समयकी मुहलत दे दी। इसी बीच वादीके वकीलको मेरी इस परिस्थितिका पता लग गया कि मेरी नीयत खराब नहीं है, असलमें इस समय अर्थसंकटमें पड़ा हूँ। इससे उनका हृदय द्रवित हुआ।

हमलोग उनके बहीखाते जाँच करने जायँ, इसके पहले वे ही अपने बहीखाते लेकर हमारे वकीलके पास आये और बोले कि 'ये रहे बहीखाते। इसीके साथ यह भी जान लें कि हमें यह

मुकदमा लड़ना नहीं है, वरं समझौता करना है।'

यह सुनकर मैं कुछ सहमा। मैंने कहा—'समझौता तो प्रतिवादी चाहा करते हैं, न कि आपवादी।'

दूसरे दिन रात्रिको उन्हींके घरपर दलाल भाईके साथ सबकी बैठक हुई। उसमें उनके वकील महोदयने ही समझौतेका यह प्रस्ताव रखा कि 'चौदह सौके बदले हम एक हजार रुपये देंगे और वह भी मासिक पचास रुपयेकी किश्तसे।' हमारी ओरसे तो इनकार करनेका प्रश्न ही नहीं था। उन्हींके मवक्किलने इस प्रस्तावको अस्वीकार करते हुए एक भी पैसा छोड़नेसे तथा किश्तपर रुपये लेनेसे इनकार किया। इसपर उनके वकीलने उन्हें समझाकर कहा—'केस सच्चा है, जोरदार है, पर हमलोगोंको परिस्थितिपर भी विचार करना चाहिये। आप मेरी बात मान लें। मैं जो आपके पास अपनी फीस लेता, उसे नहीं लूँगा। इसपर भी आपका मन न मानता हो तो घटतीकी रकम मैं अपने पाससे देनेको तैयार हूँ। पर समझौता तो कर ही लेना चाहिये।'

वकील महोदयके द्वारा जोर देकर समझानेका प्रभाव उनके मवक्किलपर पड़ा और अन्तमें वे समझौतेके लिये तैयार हो गये। केस वापस ले लिया गया। उनकी रकम धीरे-धीरे किश्तके द्वारा चुकती दे दी गयी और मैं जो संकोचमें पड़कर बम्बई छोड़ने जा रहा था, सो बम्बईमें ही रह गया।

वे वकील भाई जब कभी मुझे मिलते हैं तो उन्हें देखते ही यह विचार आता है, यदि सभी वकील इसी प्रकारका व्यवहार करने लगें तो चींटीदलकी भाँति वादी-प्रतिवादियोंके दलसे जो अदालतें उमड़ती रहती हैं, वे न उमड़ें और न्यायके लिये वर्षोंतक लोगोंको बाट न देखनी पड़े। 'अखण्ड आनन्द'

—शान्तिलाल बोले

भाईका आदर्श

गंगाधरजीके दो लड़के थे—जगन्नाथ और बिलासीराम। उनकी पहली पत्नीके जगन्नाथ थे और उसका देहान्त हो जानेपर जो दूसरा ब्याह किया था, उसके बिलासीराम थे। बिलासीरामकी माँका भी कुछ दिनों बाद ही देहान्त हो गया। फिर गंगाधरजीने विवाह नहीं किया। लड़के दोनों विवाहित थे और उनके संतान भी थीं। जगन्नाथ और बिलासीराममें परस्पर बहुत ही सद्भाव था। आश्चर्यकी बात तो यह कि दोनोंकी पत्नियोंमें आपसमें बड़ा प्रेम था। बिलासीरामकी पत्नी तो अपनी जेठानीका माँसे बढ़कर आदर करती थी। इतना होनेपर भी गंगाधरजीने यह सोचकर कि 'दोनों लड़के दो माताओंके हैं, आगे चलकर लड़ें नहीं, इसलिये इनका बँटवारा कर देना चाहा। जगन्नाथ, बिलासीराम और दोनोंकी पत्नियाँ गोदावरीबाई तथा मोहरीबाई अलग होना नहीं चाहती थीं। आखिर, पिताके बहुत कहने-सुननेपर दूकानका कारोबार तो साथ बराबरके हिस्सेमें रखा, पर जगह-जमीन, गहना, नगद रुपये आदिका बँटवारा बड़े प्रेमसे कर लिया गया। दोनोंने ही अलग-अलग मकानोंमें रहना स्वीकार नहीं किया, तब गंगाधरजीने यह निश्चय कर दिया कि 'रहे तो एक ही मकानमें, पर रसोई अलग-अलग।' घरका तथा बच्चोंके विवाह-शादीका खर्च अपना-अपना अलग-अलग लगे। दोनों भाइयोंने पिताकी आज्ञा समझकर स्वीकार कर लिया। इससे सबसे अधिक दुःख हुआ बिलासीरामकी पत्नी मोहरीबाईको। कुछ समय बाद गंगाधरजी चल बसे।

अब दोनों भाई अलग-अलग खर्च लगाते हुए बड़े प्रेमसे रहने तथा बराबरकी हिस्सेदारीमें कारोबार करने लगे। इनका आसाममें व्यापार था। आमदनी भी उस जमानेके अनुसार अच्छी थी। दूकानका काम अधिकांशमें बिलासीराम ही सँभालते थे। वे अपने भाईका बड़ा आदर करते और उन्हें परिश्रमका काम नहीं करने देते। घरमें भी अलग-अलग रसोई होनेपर भी मोहरी अपनी जेठानीकी पाँचों लड़कियों तथा तीनों लड़कोंको अपने एकमात्र पुत्रसे भी बढ़कर स्नेह करती तथा उनकी सार-सँभाल रखती।

जगन्नाथका बड़ा परिवार होनेसे घर-खर्च भी अधिक लगा और एक लड़कीके ब्याहमें दस हजार और दूसरीके विवाहमें चौदह हजार, इस प्रकार चौबीस हजार दो विवाहोंमें नाम लिखे गये। उधर खर्च सीमित होनेसे बिलासीरामकी पूँजी बढ़ती गयी। एक साल व्यापारमें इतनी मंदी आयी कि कारोबारमें कुछ आमदनी तो हुई ही नहीं, बल्कि चावल खरीदकर रखे थे, बाजार मंदा होनेसे उनमें पर्याप्त घाटा लग गया। परिणामस्वरूप घाटे तथा खर्चकी रकममें मिलाकर जगन्नाथकी जमाकी सारी पूँजी ही नहीं पूरी हो गयी, वरं बारह हजार रुपये उनके नाम पड़ने लगे और बिलासीरामके लगभग सवा लाख रुपये जमा हो गये।

इस बातका पता लगनेपर मोहरीबाई बहुत दुःखी रहने लगी। वह बार-बार अपने स्वामी बिलासीरामके सामने अपना दुःख प्रकट करके कहती कि 'हम दोनों घर फिरसे एक हो जायँ। सारी पूँजी दोनोंकी बराबर रहे, रसोई एक साथ हो और घरका खर्च, बच्चोंकी पढ़ाई, विवाह आदिका खर्च भी सब बराबरके हिस्सेमें लगे। उनके बच्चे आपके ही तो बच्चे हैं। आप धनी

हो जायँ और आपके बड़े भाई तथा उनके बच्चे गरीब हो जायँ, यह तो सर्वथा अनुचित है तथा बड़े ही दुःखकी बात है।' बिलासीराम तो इस मतके थे ही—पत्नीकी इन बातोंसे उन्हें बहुत सुख-सान्त्वना मिलती और पुनः एक साथ हो जानेका संकल्प दृढ़ होता जाता।

इधर रुपये नाम पड़ने तथा घरके खर्च एवं लड़कियोंके विवाहकी चिन्तासे जगन्नाथ उदास रहने लगे और आखिर उनको हल्का-सा ज्वर रहने लगा। अब तो बिलासीराम और उनकी पत्नीकी चिन्ता बहुत ही बढ़ गयी। पत्नीने बार-बार कहा और बिलासीरामसे भी नहीं रहा गया। वे अपना बहुत दिनोंका संकल्प पूरा करनेपर तुल गये और एक दिन वकीलके यहाँ जाकर सब दस्तावेज बना लाये और तदनुसार ही बही-खातोंमें भी जमा-खर्च कर लिया। तदनन्तर बिलासीराम आकर भाई जगन्नाथके पास बैठ गये। उनकी पत्नी मोहरीबाई भी अपनी जेठानी गोदावरीके समीप जा बैठी। बिलासीरामने बड़े भाई जगन्नाथके पैर पकड़ लिये और वे रोने लगे। उनकी आँखोंसे आँसू बहते देखकर जगन्नाथको बड़ा खेद हुआ और उन्होंने बड़े स्नेहसे इसका कारण पूछा। बिलासीरामने रोते हुए बड़े ही विनीत शब्दोंमें कहा—'भाईजी! आप बड़े हैं, मुझपर आपका अत्यन्त स्नेह है, इसीसे मैं आपके सामने बोलनेका साहस करता हूँ। मेरी धृष्टता क्षमा करें और मुझे कृपापूर्वक वचन दें कि आप मेरी प्रार्थनाको स्वीकार कर लेंगे।' जगन्नाथ स्नेह-गद्‌गद थे। उन्होंने कह दिया 'भैया! तुम रोओ मत, जो कुछ कहोगे—मुझे स्वीकार है'—बिलासीरामने उत्फुल्ल हृदयसे दस्तावेज सामने रखकर हस्ताक्षर करनेकी प्रार्थना की। जगन्नाथने बिना ही कुछ पूछे

उसपर हस्ताक्षर कर दिये। अब तो बिलासीरामके आनन्दका ठिकाना न रहा। वे बोले—'भाईजी! आपने बिना ही जाने-पूछे मेरी प्रार्थनापर अपने हस्ताक्षर करके मुझपर जो अपार विश्वास तथा कृपा की है, इसकी कहीं तुलना नहीं है। भाईजी! बात यह है, पूज्य पिताजी बँटवारा कर गये थे, आपको याद होगा। उस समय भी हमलोग इसके विरुद्ध थे, पिताजीके चले जानेके बाद तो मुझे इससे बड़ी बेचैनी रहने लगी। आपकी बहू तो मुझसे भी ज्यादा दुःखी रही और मुझे बार-बार कहती रही। मेरा आपसे पूछनेका साहस नहीं होता। आप चिन्तासे बीमार हो गये—अब तो हम दोनोंकी चिन्ता और भी बढ़ गयी। मुझसे रहा नहीं गया। तब आपसे पूछे बिना ही मैंने ये दस्तावेज बनवा लिये। आपसे पूछता और आप अस्वीकार कर जाते तो, फिर तो मेरा मरण ही हो जाता। भाईजी! इनमें यही लिखवाया गया है कि हम दोनों भाई अलग-अलग न रहकर पुनः पूर्ववत् एक साथ हो गये हैं। आपके नाम बारह हजार रुपये पड़ते थे, मेरे नामसे एक लाख पचीस हजार जमा थे। अतः उनमेंसे बारह हजार बाद देकर हमारी पूँजी एक लाख तेरह हजार दोनोंकी सीरमें रह गयी है। रसोई आजसे एक साथ ही होगी। आपकी बहूने उसकी सारी व्यवस्था कर ली है। रसोईका तथा और सब खर्च एक साथ ही घरमें लगेगा। लड़कियों तथा लड़कोंकी विवाह-शादीका खर्च भी सब घरमें ही लिखा जायगा। आपने दस्तावेजपर मुझपर कृपा करके हस्ताक्षर तो कर ही दिये हैं! मैं प्रणाम कर रहा हूँ। आप मेरी पीठ ठोंककर और मेरे सिरपर हाथ फेरकर अपनी स्वीकृति दे दीजिये।' यों कहकर वे भाई जगन्नाथके चरणोंपर गिर आँसू बहाने लगे। जगन्नाथ क्या बोलते,

वे तो कुछ सोच ही नहीं सके। पीठ ठोंककर सिरपर हाथ फेरकर उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया। दोनोंके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। उधर जेठानीके पैर पकड़कर मोहरीबाई रोने लगी। जेठानीने उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया।

उस समयसे जगन्नाथका ज्वर जाता रहा। घरमें आनन्द छा गया। अब भी उनका सब काम-काज, खर्च वैसे ही एक साथ है। जगन्नाथके आठों बच्चोंके तथा बिलासीरामके एक लड़केका विवाह हो चुका है। भरा-पूरा घर है। लड़के बड़े हो गये हैं; पर आपसमें बड़ा स्नेह है। अब अलग-अलग नहीं, दोनों भाइयोंके ही नौ लड़के-लड़कियाँ हैं।

—ताराचन्द अग्रवाल

बीमारी आशीर्वादरूप हो गयी

मैं डॉक्टरके साथ बातें कर रहा था। विषय था 'बीमारी और बीमारीसे होनेवाला लाभ'—शारीरिक लाभ नहीं; किंतु मानसिक, आत्मिक या नैतिक।

इसी बीच सीढ़ियोंपर धम-धमकी आवाज हुई और एक अधेड़ उम्रका ग्रामीण 'राम-राम' कहता हुआ सामने आ खड़ा हुआ। मैंने उसकी ओर देखा—लगभग पचास वर्षकी उम्र, सुगठित और सशक्त शरीर, चेहरेपर कहीं एक भी झुर्री नहीं।

डॉक्टरने उसके गाँव और घर-बारके कुशल-समाचार पूछे। तदनन्तर उसके चले जानेपर डॉक्टरने तुरंत ही मुझसे कहा—'संयोग भी एक चीज है, बीमारीसे होनेवाले लाभके प्रसंगमें मैं इसी आदमीकी बात आपको सुनाना चाहता था।'

मैंने डॉक्टरके सामने देखा—उन्होंने बात आगे चलायी—यह भाई गाँवका है। नाम है देवा। पाँच-छः वर्ष पहले मैं भी वहाँ था। यह देवा किसान है, अच्छी-खासी जमीन है। पर उस समय शराब तथा जुएके बिना घड़ीभर भी इससे नहीं रहा जाता था। आस-पासके सभी इससे डरते। इसकी इज्जत एक भयंकर गुंडे-जैसी थी। यह स्वयं तो खूब शराब पीता ही और सदा जूआ भी खेलता रहता, पर इसने तो भोले-भाले बहुत-से किसानोंको शराबी और जुआरी बना दिया था। पुलिस इसका नाम भी नहीं लेती।

एक बार शराब पीकर इसने भरे बाजारमें शरारत की। मैंने इसको समझाया—जरा उलाहना दिया तो यह मुझसे ही झगड़ पड़ा। मेरा शत्रु ही बन गया !

दूसरे ही महीने एक विशेष घटना हुई। देवाका लड़का बीमार पड़ा। एकमात्र लड़का था। सप्ताहभर तो देवाने कोई दवा ही नहीं करवायी। बीमारी बढ़ती गयी। टायफाइड था, उसमें न्यूमोनिया भी हो गया था। अन्तमें यह मेरे पास आया। मैं तुरंत ही दौड़ा गया। देखा तो लड़का बीमारीमें पूरा फँसा था, भयानक स्थिति थी। बड़ी देरतक लड़केकी देख-भाल करनेके बाद सामने खड़े देवापर मेरी नजर गयी। यह डबडबाई आँखों खड़ा था। मुझे लगा—'यह अवसर है। कदाचित् लाड़-चावसे पाले हुए एकमात्र पुत्रका भयानक रोग पिताके मनकी कालिमाको भी साफ कर दे।'

तुरंत ही मैंने एक आदमीको दौड़ाया। जरूरी दवाएँ मँगवायीं। इलाज शुरू हो गया—आखिरी-से-आखिरी। दूसरा दिन आया और बीत गया। सबने आशा छोड़ दी थी। गाँवमें जैसा हुआ करता है, चौबीसों घंटे सगे-सम्बन्धियोंका आना-जाना लगा था। उन लोगोंकी फुसफुसाहटसे मुझे पता लगा कि लड़केके पिताने लगभग चार दिनोंसे न तो कुछ खाया है, न शराब ही पी है।

दूसरी रात लड़का ऊँघसे जगा। दूसरी ओर बैठे देवाने आज पहली ही बार मेरी आँखोंसे आँख मिलायी। सदा-सर्वदा आग बरसानेवाले उन निर्दय नेत्रोंमें आज कितनी वेदना थी। उसके हृदयकी अकुलाहट उसके नेत्रोंमें उतर आयी थी। मैंने उसको आश्वासन दिया।

दूसरे दिनसे ही मुझे सफलताके चिह्न दीखने लगे। चौथे दिनसे तो लड़केकी दशा सुधरने लगी और सतत प्रयत्नके दसवें दिन लड़केको पूरा आराम हो गया।

तदनन्तर एक रात्रिको देवा मेरे घर आया। फीस और दवा-इंजेक्शनोंके दाम देने, तो मैंने कहा—'देवा! पैसे तो मिलते ही रहते हैं, तुम मुझे कुछ देना चाहते हो तो अबसे शराब और जूआ छोड़ दो तथा इस बरबादीसे दूसरोंको भी बचानेके प्रयत्नमें अपनेको लगा दो। ऐसा समझो कि लड़केकी बीमारीके समय तुम इस बुराईसे दूर थे, तुम्हारा मन पवित्र था। इसीसे भगवान्ने तुमपर कृपा की और बच्चा बच सका। बेटेके जीवनके बदलेमें इन बुराइयोंका त्याग कर दो।'

देवाकी आँखें भीग गयीं। उसने मेरे पैर पकड़ लिये—'साहेब! ये तो अब छोड़ ही दिये हैं। पर इतना तो आपको लेना ही पड़ेगा।'

आखिर मुझे पैसे लेने ही पड़े।

यह जो अभी गया है, यही वह देवा है। एक समय था। भयंकर गुंडा। लोग इसके नामसे थर-थर काँपते। आज लोग इसी देवाकी जबानपर मर मिटनेको तैयार हैं। इस घटनाको पाँच वर्ष होने आये हैं। गाँवके शराब और जुएके दर्जनों अड्डोंमेंसे आज एक भी नहीं रह पाया है। यह सफलता देवाकी आभारी है—सचमुच इसका श्रेय तो है इसके लड़केकी भयानक बीमारीको ही। पता नहीं ईश्वर कब कैसे कृपा करते हैं। 'अखण्ड आनन्द'

—हेमराज एम० काचा

दानवोंमें भी मानवता

दानव जन्मजात भी पैदा होते होंगे, पर बहुधा कुसंस्कारोंसे, कुसंगसे और बुरी आदतोंसे ही मानवसे दानव बनते देखे-सुने गये हैं।

जो दया, प्रेम, करुणा, मैत्री और सहिष्णुतासे शून्य हो, क्रूर और अत्याचारी हो, आततायी और उत्पीडक हो, उसे ही दानव कहते हैं और कहना चाहिये।

ऐसे लोगोंमें, ऐसा नहीं कि मानवता नामकी कोई वस्तु होती ही नहीं और वे मानवतासे सर्वथा रहित होते हैं—प्रत्युत होती है, पर एकदम दबी हुई—कुसंस्कारों और कुकर्मोंकी गहरी राखमें छिपी हुई।

अवश्य ही ऐसे अधिकांश लोगोंके जीवनमें वह जीवनभर दबी ही रह जाती है, कभी उभरकर बाहर नहीं आती, पर किसी-किसीके जीवनमें कभी-कभी बाहर भी आ जाती है और उसके जीवनपर लगे लाखों काले धब्बोंमें एक सफेद चाँद-सी चमकती अमर छाप लगा भी जाती है।

ऐसी ही एक चमचमाती अमर छाप आजसे कई वर्ष पहले घोर-घोर दानवों या डाकुओंके एक सरदारके जीवनमें भी लगी थी।

वह आज भी याद है और जीवनभर याद रहेगी।

घटना संक्षेपमें, पर जरा स्वादिष्ट बनाकर यों कही जा सकती है—

लाहौरसे कोई बारह मील दूर एक कस्बा है—काना। कानासे एक ओर कोई तीन मीलके फासलेपर एक छोटा-सा गाँव है घनक्कड़।

घनक्कड़में मेरी स्त्रीका ननिहाल था। मेरी तरह मेरी स्त्रीको भी देहाती जीवन बहुत पसंद था और मेरी तरह अब भी है, पर अब यह पसंद 'पसंद' ही रह गयी है। रहना पड़ रहा है शहरोंमें, अप्राकृतिक जीवनमें, सीधे-सादे और सरल जीवनसे निकलकर औपचारिक जीवनमें—दिखावेके जीवनमें, सुख-आराम और भोग-विलासके पीछे भागनेवाले जीवनमें। अस्तु!

विवाहसे पहले मेरी तरह मेरी स्त्री भी प्रायः ननिहालमें ही रहती थी और तत्पश्चात् भी विभाजनसे पहले वह प्रायः ननिहालमें ही कुछ दिन बिताने चली जाती थी, यद्यपि उसके मैकेवाले लाहौरमें रहते थे।

मैं उसे लाहौरसे लाने तो भले ही न जाऊँ, पर अपने पिछले देहाती जीवनको एक बार फिर मूर्तरूपमें देखनेके लिये सम्भव हो तो वहीं कहीं आस-पास टिक जानेके लिये गाँवमें जरूर चला जाता था, उसे लाने या मिलनेके लिये।

सन्-संवत् तो ठीकसे याद नहीं। मौसम अच्छा था। इतना याद है और यह भी याद है कि मैं एक दिन सबेरे-सबेरे ही घनक्कड़में पहुँच गया और एक काम याद आ जानेसे दोपहरको ही वहाँसे चल पड़ा।

कोई दो बजेके करीब मैं काना पहुँच गया। लाहौरके लिये मोटर वहाँसे चलती थी। मोटर चलनेका खास समय नियत नहीं होता था। जब सवारियोंसे ठसाठस भर जाय, छतपर ज्यादा-से-ज्यादा माल-असबाब लद जाय, चल पड़ती थी।

एक मोटर खड़ी थी और उसका चालक एवं कंडक्टर सवारियोंको आवाजें दे-देकर बुला रहे थे। मैंने मोटरवालेसे पूछा—'सरदारजी! मोटर कबतक चलेगी?' उसने कहा—'लाहौर जानेके लिये एक बारात आनेवाली है, अभी आ गयी

अभी, नहीं तो, सवारियाँ पूरी हो जानेपर।'

मैं मोटरमें बैठ गया और मेरे बाद आनेवाली भी कई सवारियाँ उसमें बैठ गयीं।

इतनेमें बारात भी आ गयी और वह भी इसमें बैठने लग गयी। बारातके अधिकांश आदमी तो एक-पर-एक चढ़कर बैठ गये। शेषके लिये क्या हो? मोटरचालकने गैर बारातियोंको निकलनेके लिये कहना शुरू कर दिया। कुछ निकल आये, कुछ डटे रहे।

बचे हुए बारातियोंसे जब मोटर ब्लैकहोल बनने लगी और मेरा दम घुटने लगा तो मैंने बाहर निकलनेकी कोशिश शुरू कर दी।

मुझे निकलता हुआ देखकर मोटरचालक बोला—'बैठे रहिये लालाजी! आप तो बड़े गुरुमुख सज्जन लगते हैं।'

मैं इसलिये गुरुमुख सज्जन नहीं लगता था कि मैंने कोई केश धारण किया हुआ था या गुरुवाणीका पाठ कर रहा था बैठा-बैठा, प्रत्युत मैंने कपड़े कीमती पहिन रखे थे और आठ-दस तोला सोना पहिन रखा था, यह मुझे बादमें पता लगा।

राम-राम करते मोटर चली, पर 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' वाली रफ्तारसे धीरे-धीरे।

ऊपरसे संध्याकी वेला आ रही थी। सवारियाँ कहें—'सरदारजी! जरा तेज कीजिये मोटरको। रात्रि न पड़ जाय रास्तेमें।'

सरदारजी तो कुछ न बोले, कंडक्टर कभी-कभी कह दे—'घबराइये नहीं, हमको भी लाहौर ही जाना है।' कंडक्टर मुसलमान था।

चलते-चलते मोटर 'जल्लोकी रक्ख' या 'इछरेकी रक्ख' ठीकसे याद नहीं रहा—एक भयानक जंगलके आगे एकदम रुक गयी। मोटरवाला बोला—'कहता था, जल्दी न करायें, मोटर

खराब हो जायगी। देखा, मोटर खराब हो गयी। उतरिये अब सब लोग! मोटर ठीक करूँगा।'

कृष्णपक्ष, सुरमई उजियाला, सब लोग मोटरसे नीचे उतर आये। उधर जंगलकी तरफ क्या दिखायी दिया—ठाठा बाँधे हुए तेज और चमचमाते हथियारोंवाले दो जने उधरसे निकले, दो इधरसे।

देखते-ही-देखते कितने ही डाकू एकत्र हो गये और उनमेंसे दो व्यक्ति जरा और भी नजदीक आकर एक वृक्षके नीचे खड़े हो गये। तत्पश्चात् उनमेंसे एक मेरे समीप आकर कहने लगा—'इधर आ। चल जरा सामने!'

मेरा शरीर पहले ही काँप रहा था, अब और काँपने लगा, काटो तो खून नहीं।

डरता, हर-हर करता मैं उसके साथ हो लिया और वृक्षके नीचे उसके साथ जा पहुँचा। लानेवालेने कहा—'देख ले सुरैणिआ* ठीक है न वही?'

सुरैणा बोला—'ठीक है, पर मियाँ! वह दादा (ब्राह्मणको गाँवमें दादा कहते हैं) खड़ा है, उसे दिखा ले। उसे तसल्ली करा दे।'

लानेवालेने उसे बुलाया और टार्चसे नीचेसे ऊपरतक मेरी ओर देखकर बोला—'कहाँसे आया है लाला?'

मैंने काँपते हुए कहा—'घनक्कड़से।'

'तू ईसरदास शाहका दामाद है?' (ईसरदास मेरी धर्मपत्नीके नानाका नाम था; जिनका देहान्त हो चुका था।)

मैंने कहा—'जी हाँ।' लानेवालेने खींचकर एक चाँटा मेरे मुँहपर जमाते हुए कहा—'कंजर कहींके, अगर यहाँ तू मर जाता तो हम किसका घर पूछते? हमारी तो बच्ची विधवा हो जाती।

* सुरैणा, मतलब सुरैणसिंह।

उस बेचारीने अभी देखा ही क्या है। भाग जा यहाँसे।'

मैंने झुककर जब हाथ जोड़े तो चाँटा मारनेवाला बोला—'हाथ न जोड़। रहने दे तू हमारा दामाद है। हाथ तो हमें जोड़ने चाहिये थे तेरे आगे। भैया! क्षमा करना चाँटा लगा बैठा हूँ।'

मैं मोटरके समीप सवारियोंमें आ मिला तो मियाँने आवाज दी मोटरवालेको—'ले जा जल्दी-जल्दी, रास्तेमें कोई रोकने लगे तो कह देना अपनी ही सवारियाँ हैं।'

मोटरवालेने हम सबको बैठा लिया और हवासे बातें करने लगा। रास्तेमें कंडक्टरने कहा सवारियोंसे—'शुक्र कीजिये, इस लालाकी बदौलत आप सब बच गये। नहीं तो, न जाने आज क्या होता। जो आदमी इस लालाको ले गया था, वह उन डाकुओंका सरदार अकबर था, जो घनक्कड़का ही रहनेवाला मशहूर बदमाश है।'

अब लाहौर पहुँचते देर न लगी और हम सब सही-सलामत लाहौर पहुँच गये। बादमें एक दिन अकबरने स्वयं ही मेरी पत्नीके मामाको सारी बात सुनाकर कहा—'मैं तो शुक्र करता हूँ अल्लाह तालाका जिसकी मेहरसे मैंने कंसो (मेरी पत्नीका मैकेका नाम कंसो है)-के पतिको पहचान लिया, नहीं तो हो सकता था सारी जिंदगीका मुझपर दाग लग जाता। मैं अपनी मासूम बच्चीको क्या मुँह दिखाता?'

यह है दानवोंमें भी मानवता उभर आनेकी सच्ची कहानी।

—गुराँदित्ता खन्ना

भाग्यका चमत्कार

सन् १९५३ में हम मोगा मण्डी, फीरोजपुर जिलेमें अपने मामाके यहाँ गये हुए थे। लगभग दो महीने वहाँ रहे थे। वहाँ एक सरदार थे, बर्तन सिरपर लेकर घूम-घूमकर बेचा करते। एक दिन फूट-टूटमें उन्हें कहींसे पचास पैसेमें किसी रईस घरानेका एक पानदान मिल गया। पानदान बहुत सुन्दर था, उसपर जड़ाऊ काम था। पानदान बंद था। वे शामको जब घर आये तो मुहल्लेकी कुछ औरतें जुट गयीं। किसीने थाली खरीदी, किसीने गिलास लिया। एक औरत वह पानदान तीन रुपये पचीस पैसेमें खरीदकर अपने घर ले गयी। घर जाकर उसने उसको खोलना चाहा, बहुत जोर लगाया, पर जब नहीं खुला तो उसने आकर अपने दाम वापस ले लिये और पानदान सरदारजीको लौटा दिया। दूसरे दिन रविवार था। दुकानें बंद थीं, इसलिये सरदारजी चौतरेपर बर्तन लगाकर बैठ गये। किसीने उस पानदानको फिर तीन रुपये पचीस पैसेमें खरीदा। पर भाग्यकी बात, उससे भी वह पानदान नहीं खुला, तब शामको वह भी लौटा गया। उसके लौटा जानेके बाद सरदारजीको बड़ा गुस्सा आया और कहने लगे कि 'ऐसा क्या पानदान है जो किसीसे नहीं खुलता।' गुस्सेमें आकर सरदारजीने उसको उठाकर जोरसे सड़कपर दे मारा और कहा कि 'देखता हूँ—यह कैसे नहीं खुलता।'

सड़कपर गिरते ही पानदानके दो टुकड़े अलग-अलग हो

गये। डिब्बा एक तरफ और ढक्कन दूसरी तरफ गिर पड़ा। पर यह देखकर सब आश्चर्यचकित हो गये और सबने अंगुली मुँहमें दबा ली—कि उसमें सात हजार रुपयेके सौ-सौके सत्तर नोट थे। सरदारने डिब्बा उठाकर नोट बटोर लिये। तबसे सरदार वहाँ ठाटसे बर्तनोंकी दूकान करते हैं। यह मेरी आँखों-देखी घटना है।

—मदनलाल पिहोवा

ईमानदारीका फल

घरमें स्त्रीको टी० बी० हो रही थी। छोटे एकमात्र बच्चेको भयानक कुकुर-खाँसी। न दवाके लिये पैसे थे, न पथ्यके लिये। मगनलाल बीस रुपये महीनेकी नौकरी करता था। डॉक्टरने कहा था कि वह सौ रुपयेका प्रबन्ध कर सके तो उसके स्त्री-बच्चेके लिये दवा तथा पथ्यकी व्यवस्था हो सकती है और दोनोंके प्राण बच सकते हैं। डॉक्टर अपनी फीस नहीं लेगा, पर दवा तथा पथ्यकी व्यवस्था तो मगनलालको ही करनी पड़ेगी।

मगनलालका बुरा हाल था। कहाँसे पैसे मिलें। उसके मालिक भी बहुत धनी नहीं थे। मामूली व्यापार करते थे। उनके दो लड़के बाहर पढ़ते थे तथा बूढ़े माँ-बाप देशमें रहते थे। दोनों जगह पचास-पचास रुपये वे प्रति मास भेजा करते थे। उन्होंने दो मनीआर्डर पचास-पचास रुपये लिखकर मगनलालको सौ रुपयेसमेत दिये और डाकमें लगानेको भेजा।

मगनलालको स्त्री-बच्चेकी जान बचानेके लिये सौ रुपयेकी ही जरूरत थी और ये सौ रुपये ही थे। स्त्री-बच्चेकी करुण दशा, उनकी रोनी सूरत और रुपयोंकी व्यवस्था होनेपर उनकी जान बचानेकी पूरी आशा। मगनलालका मन विचलित होने लगा, बार-बार संघर्ष हुआ, पर आखिर स्त्री-बच्चेके मोहने विजय पायी। मगनलाल मनीआर्डर न लगाकर शामको रुपये घर ले गया पर उसका मन बड़ा खिन्न था। चेहरा अत्यन्त उदास। वह पश्चात्तापकी आगसे जल रहा था। घर जाकर उसने

पत्नीसे कहा बड़ी हिम्मत बटोरकर कि 'वह सौ रुपये लाया है—दवा-पथ्यादिके लिये।' पत्नीने उसके चेहरेको उदास तथा आँखोंमें छलकते आँसुओंको देखा—पूछा, 'कहाँसे कैसे लाये हैं?' उसने सारी बातें बता दीं। पत्नीने कहा—'आपने मोहमें पड़कर यह क्या किया? मान लीजिये, मेरे तथा बच्चेके प्राण नहीं बचेंगे; पर कौन कह सकता है कि अगले जन्ममें हमलोगोंका फिर मिलाप नहीं होगा। पर खोया हुआ ईमान, गँवाई हुई सचाई कहाँसे वापस मिलेगी। आप भगवान्पर भरोसा कीजिये और कल ही दोनों मनीआर्डर लगा दीजिये तथा हिम्मत करके अपना यह अपराध मालिकको बता दीजिये। हो सकता है, वे आपकी एक बार नीयत बिगड़ी जानकर आपको निकाल दें, पर भगवान् आपके योगक्षेमको निबाहेंगे। आप भगवान्पर पूरा भरोसा कीजिये।'

मगनलालका मन तो दुविधामें था ही। दो प्रकारके पापी होते हैं। एक तो वे—जिनको परिस्थितिके परवश होकर मानसिक कमजोरीके कारण पाप करने पड़ते हैं, पर वे पाप उनके हृदयमें शूलकी तरह चुभते रहते हैं। दूसरे वे, जो पाप करके अपनेको बुद्धिमान् मानते तथा गौरवका अनुभव करते हैं। ऐसे पापियोंका उद्धार बड़ा ही कठिन होता है। पर मगनलालका यह पाप परिस्थिति-परवश हुआ था, उसके मनमें पश्चात्ताप था। उसको पत्नीकी पवित्र प्रेरणासे अपनी भूल स्पष्ट हो गयी। दूसरे ही दिन उसने मनीआर्डर लगा दिये और मनीआर्डर लगाकर कल वापस न लौटनेकी, मोहवश रुपये रख लेनेकी, अपने मनकी बिगड़ी हालतकी तथा पत्नीके साथ हुई बातचीतकी सारी कथा रोते-रोते मालिकको सुना

दी और कहा कि मुझसे यह अक्षम्य अपराध हो ही गया है, आप मुझे निकाल दीजिये।

मालिक बड़े नेक तथा सहृदय थे। वे मगनलालकी स्त्रीकी बीमारीका हाल कुछ सुन चुके थे। मगनलालने तो कभी विशेष बताया नहीं था। इसलिये वे समझते थे—अच्छी हो गयी होगी। आज सब बातें सुनकर उनके नेत्रोंमें आँसू आ गये और सहानुभूति जाग उठी। उन्होंने मगनलालका वेतन बीससे पैंतालीस कर दिया। ऐसे ईमानदार आदमी मासिक पैंतालीसपर मिल जायँ तो बड़े सस्ते मिले। सौ रुपये नकद उसी समय दे दिये और कह दिया कि 'पत्नी तथा बच्चेके लिये दवा-पथ्यमें जो खर्च लगे, सब दूकानसे ले लिया करो।'

मगनलाल और उसकी पत्नीकी ईमानदारीका फल हाथों-हाथ मिला। पत्नी और बच्चा दोनों अच्छे हो गये। आगे चलकर तो मालिकने मगनलालको अपनी दूकानमें बराबरका हिस्सेदार बना लिया।

—रामजीवन चौधरी

॥ श्रीहरिः॥

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ भक्त-चरित्र

कोड	पुस्तक
40	**भक्त चरितांक**—सचित्र, सजिल्द
51	**श्रीतुकाराम-चरित**—जीवनी और उपदेश
121	**एकनाथ-चरित्र**
53	**भागवतरत्न प्रह्लाद**
123	**चैतन्य-चरितावली**—सम्पूर्ण एक साथ
751	**देवर्षि नारद**
167	**भक्त भारती**
168	**भक्त नरसिंह मेहता**
1564	**महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव**
169	**भक्त बालक**—गोविन्द, मोहन आदिकी गाथा
170	**भक्त नारी**—मीरा, शबरी आदिकी गाथा
171	**भक्त पंचरत्न**—रघुनाथ, दामोदर आदिकी गाथा
175	**भक्त-कुसुम**—जगन्नाथ आदि छः भक्तगाथा
173	**भक्त सप्तरत्न**—दामा, रघु आदिकी भक्तगाथा
174	**भक्त चन्द्रिका**—सखू, विट्ठल आदि छः भक्तगाथा
176	**प्रेमी भक्त**—बिल्वमंगल, जयदेव आदि
177	**प्राचीन भक्त**—मार्कण्डेय, उत्तंक आदि
178	**भक्त सरोज**—गंगाधरदास, श्रीधर आदि
179	**भक्त सुमन**—नामदेव, राँका-बाँका आदिकी भक्तगाथा
180	**भक्त सौरभ**—व्यासदास, प्रयागदास आदि
181	**भक्त सुधाकर**—रामचन्द्र, लाखा आदिकी भक्तगाथा
182	**भक्त महिलारत्न**—रानी रत्नावती, हरदेवी आदि
183	**भक्त दिवाकर**—सुव्रत, वैश्वानर आदिकी भक्तगाथा
184	**भक्त रत्नाकर**—माधवदास, विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा
185	**भक्तराज हनुमान्**—हनुमान्जीका जीवनचरित्र
186	**सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र**
187	**प्रेमी भक्त उद्धव**
188	**महात्मा विदुर**
136	**विदुरनीति**
138	**भीष्मपितामह**
189	**भक्तराज ध्रुव**

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित सर्वोपयोगी प्रकाशन

कोड	पुस्तक
55	महकते जीवनफूल
57	मानसिक दक्षता
59	जीवनमें नया प्रकाश
60	आशाकी नयी किरणें
64	प्रेमयोग
119	अमृतके घूँट
120	आनन्दमय जीवन
122	एक लोटा पानी
129	एक महात्माका प्रसाद
130	तत्त्वविचार
131	सुखी जीवन
132	स्वर्णपथ
133	विवेक-चूड़ामणि
134	सती द्रौपदी
137	उपयोगी कहानियाँ
147	चोखी कहानियाँ
151	सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला
157	सती सुकला
159	आदर्श उपकार— (पढ़ो, समझो और करो)
160	कलेजेके अक्षर ,,
161	हृदयकी आदर्श विशालता ,,
162	उपकारका बदला ,,
163	आदर्श मानव-हृदय ,,

कोड	पुस्तक
164	भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा (पढ़ो, समझो और करो)
165	मानवताका पुजारी ,,
166	परोपकार और सच्चाईका फल (पढ़ो, समझो और करो)
191	भगवान् कृष्ण
193	भगवान् राम
195	भगवान्‌पर विश्वास
196	मननमाला
202	मनोबोध
387	प्रेम-सत्संग-सुधामाला
501	उद्धव-सन्देश
510	असीम नीचता और असीम साधुता
542	ईश्वर
668	प्रश्नोत्तरी
698	मार्क्सवाद और रामराज्य— स्वामी करपात्रीजी
701	गर्भपात उचित या....
747	सप्त महाव्रत
774	कल्याणकारी दोहा-संग्रह, गीताप्रेस-परिचयसहित